हिन्दी साहित्य कला, संस्कृति और अभिव्यक्ति

कक्षा – एकादश

नवीन पाठ्य-क्रम

हिन्दी 'अ' (प्रथम भाषा)

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्

हिन्दी साहित्य

कला, संस्कृति और अभिव्यक्ति

=+‡FF-J=+F¼è+

ÎFæFÚÎF ÑFF*Ý-=+ÛF

PùÎ¼U iEj (Ò»FÛF ÚFFðFF)

पश्चिम बंग सरकार द्वारा आर्थिक अनुदान
एकादश श्रेणी के छात्र-छात्राओं को बिना मूल्य वितरण के लिए।
विक्रय के लिए नहीं।

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्

West Bengal Council of Higher Secondary Education

First Edition : May, 2024

Publisher : Dr. Priyadarshini Mallick
Secretary
West Bengal Council of Higher Secondary Education
Vidyasagar Bhawan, 9/2, Block - D-J
Sector-II, Saltlake, Kolkata-700091

Copyright reserved by West Bengal Council of Higher Secondary Education. No part of this book may be reproduced / reprinted / script used / font translated without the written permission of honourable Secretary, Dr. Priyadarshini Mallick.

Printed at

West Bengal Text Book Corporation Limited
(Government of West Bengal Enterprise)

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और

राष्ट्र की एकता और अखंडता

सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई० (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

भारतवर्ष के नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं मौलिक कर्त्तव्य

मौलिक अधिकार (भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14-35)

1. समता (या समानता) का अधिकार :

● देश का कानून सभी नागरिकों को एक समान मानेगा और समान रूप से प्रत्येक की रक्षा करेगा।

● जाति, लिंग, धर्म तथा मूल वंश के आधार पर सार्वजनिक स्थानों पर राज्य कोई भेद-भाव नहीं करेगा।

● सार्वजनिक नियोजन में प्रत्येक नागरिक के लिए अवसर की समानता होगी।

● अस्पृश्यता का उन्मूलन और वर्जन घोषित किया गया है।

● सेना या विधा संबंधी सम्मान के... सिवाय अन्य कोई भी उपाधि राज्य द्वारा प्रदान नहीं की जाएगी।

2. स्वतंत्रता का अधिकार

● बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

● शांतिपूर्वक हथियारों के बिना एकत्रित होने और सभा करने की स्वतंत्रता।

● संघ / यूनियन / सहकारी समिति बनाने की स्वतंत्रता।

● भारतवर्ष के किसी भी हिस्से / क्षेत्र में आवागमन की स्वतंत्रता।

● देश के किसी भी भाग में निवास करने और बसने की स्वतंत्रता।

● कोई भी व्यापार अथवा पेशा अथवा वृत्ति अपनाने या करने की स्वतंत्रता।

● अपराध करने के समय लागू कानून के तहत ही अपराधी को सजा दी जाएगी।

● किसी व्यक्ति को एक अपराध के लिए एक से अधिक बार दंडित नहीं किया जा सकता।

● प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार।

● किसी भी व्यक्ति को बिना ठोस / यथार्थ कारण के हिरासत में नहीं लिया जा सकता और हिरासत में लिए गए व्यक्ति को अपना बचाव करने का अवसर प्रदान करना होगा।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार :

● वेतन बिना श्रम या किसी व्यक्ति को खरीदने और विक्रय करने पर वर्जन।

● 14 वर्ष से कम वय वाले किसी बच्चे को कारखानों खदानों या अन्य किसी जोखिम भरे कामों पर नियुक्त करना वर्जित है।

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार :

● अंत:करण या विवेक की स्वतंत्रता, किसी धर्म को मानने, आचरण करने एवं प्रचार प्रसार करने के लिए सभी नागरिक स्वतंत्र हैं।

● अपने धर्म के लिए संस्थाओं की स्थापना करने एवं देखभाल करने तथा विधि के अनुसार सम्पत्ति के अर्जन, स्वामित्व और प्रशासन का अधिकार है।

● किसी विशेष धर्म / धार्मिक संप्रदाय की उन्नति या पोषण के लिए सीधे प्रयोग में आने वाली आय पर कर नहीं लगाया जा सकता।

● राज्य द्वारा पोषित शिक्षण-संस्थानों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती और ऐसे संस्थानों में विद्यर्थियों को किसी धार्मिक अनुष्ठान में उनकी इच्छा के विरुद्ध धर्मोपदेश सुनने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

5. संस्कृति और शिक्षा संबंधित अधिकार :

● हमारे देश के सभी नागरिकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को बचाने, सुरक्षित रखने और प्रचारित करने का अधिकार है।

राज्य अपने द्वारा पोषित अथवा संचालित शिक्षण संस्थानों में वर्ण, धर्म, जाति अथवा भाषा के आधार पर किसी व्यक्ति के प्रवेश को मना नहीं कर सकता।

सभी धार्मिक और भाषिक अल्पसंख्यकों का अपने पसंद की शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना करने और चलाने का अधिकार है।

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार :

कोई व्यक्ति अपने मौलिक अधिकार की रक्षा करने के लिए देश के सर्वोच्च न्यायालय और उच्च-न्यायालय के शरणापन्न हो सकता है।

मूल कर्तव्य
(भारतीय संविधान का 51क अनुच्छेद)

मूल कर्तव्य-भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह-

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे :

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखें और उनका पालन करें :

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे :

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वन किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे :

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रिओं के सम्मान के विरुद्ध है :

(च) हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे :

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे :

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे :

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे :

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई उंचाईयों को छू ले :

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष की आयु वाले अपने, यथास्थिति बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

PREFACE

West Bengal Council of Higher Secondary Education (WBCHSE) has taken initiative to revise the curriculum/syllabus of all the subjects with the introduction of Semester System with 2024-2025 academic year. In this direction WBCHSE has formed individual subject committees by inducting faculty members from various schools/colleges/universities.

The WBCHSE has developed ***Hindi Sahitya : Kala, Sanskriti Aur Abhivyakti*** as **Hindi (1st Language)** textbook for Classes XI to be studied in all Government, Government Sponsored, Government Aided and Government Affilliated Schools of West Bengal.

The delight of meeting great minds, the discovery of new worlds, the excitement of facing different real-life situations and characters and the sensitising of the mind while the soul comes to us through the experience of reading and responding to good literature. That is what the selections in ***Hindi Sahitya : Kala, Sanskriti Aur Abhivyakti*** aim to do.

In ***Hindi Sahitya : Kala, Sanskriti Aur Abhivyakti,*** learners are exposed to a wide range of literary Hindi texts.

The texts are an interesting mix of classic and contemporary selections of prose and poetry. There is an assortment of Indian and global texts in a variety of genres so that students can enjoy the richness of literature in its various forms. A play has also been included in the syllabus for class XI, where serious thought has gone into ensuring that the choice of texts are sensitive, relevant and thought provoking so that students become more insightful and responsive in their reading of literature.

The Government has decided to distribute this book free of cost. We are grateful to Prof. Bratya Basu, the Minister-In-Charge, Department of School and Higher Education, Government of West Bengal, for his initiative.

Suggestions, views and comments to improve the book are welcome.

May, 2024
Vidyasagar Bhavan

Chiranjib Bhattacharjee
President
West Bengal Council of
Higher Secondary Education

CLASS - XI

SEMESTER – I

SUBJECT : HINDI - A

FULL MARKS : 40

UNIT NO.	TOPICS	CONTACT HOURS	MARKS
Unit-I साहित्य क काव्य	अमीर खुसरो – पहेलिया सूरदास – सूर के पद बिहारी लाल – बिहारी के दोहे भारतेंदु हरिश्चन्द्र – मुकरियां	24	1 × 10 = 10
Unit-I साहित्य ख गद्य	डॉ० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम – विज्ञान में जीवन जयशंकर प्रसाद – दासी सत्यजीत राय – सहपाठी	21	1 × 10 = 10
Unit-II उपन्यास (पूरक पाठ)	मुंशी प्रेमचंद – गबन (अध्याय 1 से 26 तक) अथवा रणेन्द्र–ग्लोबल गाँव के देवता (आरंभ से पृष्ठ 50 तक)	20	1 × 5 = 5
Unit-III अपठित बोध	काव्य अथवा गद्य	10	1 × 5 = 5
Unit-IV व्याकरण	लिंग, वचन, उपसर्ग, प्रत्यय, मुहावरे, कारक, अशुद्धि संशोधन	21	1 × 5 = 5
Unit-V पारिभाषिक शब्द	50 शब्द	4	1 × 5 = 5
	Total	**100**	**40**

CLASS - XI

SEMESTER – II

SUBJECT : HINDI (HINA)

FULL MARKS : 40

UNIT NO.	TOPICS	CONTACT HOURS	MARKS
Unit-I साहित्य क काव्य	मैथिलीशरण गुप्त – सखी वे मुझसे कहकर जाते सूर्यकांत त्रिपाठी निराला – राजे ने अपनी रखवाली की केदारनाथ अग्रवाल – वसंती हवा दुष्यंत कुमार त्यागी – कहाँ तो तय था	24	$2 \times 4 = 8$ $3 \times 2 = 6$ $5 \times 2 = 10$ 24
Unit-I साहित्य ख गद्य	हजारी प्रसाद द्विवेदी – कुटज भीष्म साहनी – भाग्य रेखा हरिशंकर परसाई – भेड़े और भेड़िए	21	
Unit-II उपन्यास	मुंशी प्रेमचंद – गबन (अध्याय 27 से अंत तक) अथवा रणेन्द्र–ग्लोबल गाँव के देवता (पृष्ठ संख्या 51 से अंत तक)	20	$1 \times 5 = 5$ $3 \times 2 = 6$ 11
Unit-III रचना	पत्र लेखन अनुच्छेद लेखन अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद	15	$1 \times 5 = 5$
	Total	**80**	**40**

PROJECT

CLASS-XI (SEMESTER II)

FULL MARKS : 20

(PROJECT REPORT – MAXIMUM IN PAGES 20 TO 25)

PæFÃF»FU EÑFÎFU G˜ŠFÎFõFFÞ PÎFÛÎFFP=+¶F PæFðFÜFX ÛF õF =+XG J=+ ÑFPÞÜFX¡FÎFF PÂ¶FUÜF õFÛFõ©Þ ÛF Òõ¶F¶F =+Þ :

(क) किसी कहानी/लोक कथा/प्रसंग का नाट्य रूपांतरण अथवा रेडियो नाट्य रूपांतरण की हस्तलिखित प्रस्तुति।

(ख) किसी एक तात्कालिक समस्या जैसे :

(अ) जनसंख्या विस्फोट : देश की विकराल समस्या।

(ब) भूमंडलीय ऊष्मीकरण (ग्लोबल वार्मिंग)।

(स) महासागरों का बढ़ता जलस्तर : खतरों की दस्तक का विस्तृत विवरण (कारण–निवारण सहित)

पर विस्तृत लेखन।

(ग) हिंदी की उपभाषाएँ एवं उसकी बोलियाँ (विस्तृत लेखन)।

(घ) डायरी और हम—डायरी लिखने की शैली, उद्देश्य, किसी विज्ञ व्यक्ति की डायरी के कुछ अंश और अपनी दस दिन की दिनचर्या को डायरी शैली में प्रस्तुत करना।

(ङ) मेरे प्रिय साहित्यकार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व (विस्तृत लेखन)।

साभार

नीरू शुक्ला

सुशीला साव

संजय साह

आवरण

सुब्रत माझी

PæFðFÜF - õF˜FU

=+‡FF-J=+F¼èF

Ò»FÛF õFÛFõ©Þ

1. õFFPù¶ÜF i=+j =+FæÜF

(i)	पहेलियाँ	अमीर खुसरो	01-05
(ii)	सूर के पद	सूरदास	06-08
(iii)	बिहारी के दोहे	बिहारीलाल	09-10
(iv)	मुकरियाँ	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	11-12

2. õFFPù¶ÜF i&Fj ;FÃ

(i)	विज्ञान में जीवन	डॉ० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम	15-22
(ii)	दासी	जयशंकर प्रसाद	23-35
(iii)	सहपाठी	सत्यजीत रॉय	36-44

3. ÑFFPÞÚFFPðF=+ èFÜ¼ 45

PÂ¶FÜÜF õFÛFõ©Þ

1. õFFPù¶ÜF i=+j ;FA

(i)	सखी वे मुझसे कहकर जाते	मैथिलीशरण गुप्त	48-49
(ii)	राजे ने अपनी रखवाली की	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	50-51
(iii)	वसंती हवा	केदारनाथ अग्रवाल	52-55
(iv)	कहाँ तो तय था	दुष्यंत कुमार त्यागी	56-57

2. õFFPù¶ÜF i&Fj ;FÃ

(i)	कुटज	हजारी प्रसाद द्विवेदी	60-65
(ii)	भाग्य रेखा	भीष्म साहनी	66-70
(iii)	भेड़े और भेड़िए	हरिशंकर परसाई	71-74

HIN A

=+‡FF J=+F¼èF ÛF EÍÜF¶FæÜF ÑFÞ=+ ÑFõ¶F=+X =+ ÎFFÛF-

(1) गबन – मुंशी प्रेमचन्द

अथवा

(2) ग्लोबल गाँव के देवता – रणेन्द्र

Note : पूरक पाठ में निर्धारित पुस्तक को विद्यार्थी बाज़ार से क्रय करें।

SEMESTER - I

साहित्य 'क'

काव्य

पहेलियाँ/बूझ पहेली

अमीर खुसरो

कवि परिचय :

अमीर खूसरो का जन्म सन 1253 ई. में एटा (उत्तरप्रदेश) के पटियाली नामक क़स्बे में गंगा किनारे हुआ था। वे मध्य एशिया की लाचन जाति के तुर्क सैफ़ुद्दीन के पुत्र थे। लाचन जाति के तुर्क चंगेज़ ख़ाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर बलबन (1266-1286 ई.) के राज्यकाल में शरणार्थी के रूप में भारत आकर बसे थे। खुसरो के बारे में फ़ारसी और हिंदवी दोनों भाषाओं में बहुत सारी रचनाएँ लिखी गई हैं। वह बहुत अच्छे कवि थे। उनके साहित्य के कई कार्यों में ग़ज़ल, मसनवी, कव्वाली और अन्य प्रकार की कविताएँ शामिल थीं। जीवन के सभी क्षेत्रों के लोग उनकी कविता में रुचि रखते थे, जो ज्यादातर प्रेम, आध्यात्मिकता और समाज के अवलोकन के बारे में थी। जन्मजात कवि होते हुए भी खुसरो में व्यावहारिक बुद्धि की कमी नहीं थी। सामाजिक जीवन की उन्होंने कभी अवहेलना नहीं की। जहाँ एक ओर उनमें एक कलाकार की उच्च कल्पनाशीलता थी, वहीं दूसरी ओर वे अपने समय के सामाजिक जीवन के उपयुक्त कूटनीतिक व्यवहार-कुशलता में भी दक्ष थे। उस समय बुद्धिजीवी कलाकारों के लिए आजीविका का सबसे उत्तम साधन राज्याश्रय ही था। खुसरो ने भी अपना सम्पूर्ण जीवन राज्याश्रय में बिताया। उन्होंने गुलाम, ख़िलजी और तुग़लक़-तीन अफ़ग़ान राज-वंशों तथा 11 सुल्तानों का उत्थान-पतन अपनी आँखों से देखा। आश्चर्य यह है कि निरन्तर राजदरबार में रहने पर भी ख़ुसरो ने कभी भी उन राजनीतिक षड्यन्त्रों में किंचिन्मात्र भाग नहीं लिया जो प्रत्येक उत्तराधिकार के समय अनिवार्य रूप से होते थे। राजनीतिक दाँव-पेंच से अपने को सदैव अनासक्त रखते हुए ख़ुसरो निरन्तर एक कवि, कलाकार, संगीतज्ञ और सैनिक ही बने रहे।

अमीर खुसरो के पिता स्वयं पढ़े लिखे नहीं थे, क्योंकि उन्होंने अपने काव्य संग्रह 'गुर्रतुल कमाल' की भूमिका में 'उम्मी' अर्थात अनपढ़ बताया है। परन्तु फिर भी उनके पिता ने उनकी शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध

किया था। डॉ० शुजाअत अली सन्देलवी इस सन्दर्भ में लिखते है ''चार बरस की उम्र तक अमीर खुसरो पटियाली में रहे इसके बाद अमीर सैफुद्दीन उनको अपने हमराह देहली ले लिये और वहाँ उनकी तालीम व तरबियत का बेहतर से बेहतर इन्तजाम किया।''

अमीर ख़ुसरो ने अपने जीवनकाल में कई ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें उनकी विचारधारा, संगीत, साहित्य, तर्कशास्त्र और धार्मिक विषयों पर व्याख्यान शामिल हैं। इनकी कृतियों की संख्या 99 बताई जाती है, परंतु अभी तक 45 कृतियों का ही पता चला है। कुछ प्रमुख ग्रंथों का वर्णन निम्नलिखित है :

i&FFPáF=+ÙFFÞÙj (Khalikbari) : यह ग्रंथ अमीर ख़ुसरो की अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाओं में से एक है। इसमें उन्होंने तारीख, भक्ति, विचारधारा और धार्मिक मुद्दों पर व्याख्यान किया है।

iÎF-Ù-PÕFÑFÙj (Nuh-Sipi) : इस ग्रंथ में अमीर ख़ुसरो ने संगीत, ताल और रागों के विषय में व्याख्यान किया है। इसमें उन्होंने अपने सांगीतिक ज्ञान की विस्तृत जानकारी साझा की है।

i¼ÙæFFÎF-J-&FÕFÞXj (Divan-e-Khusro) : यह अमीर ख़ुसरो की कविताओं का संग्रह है। इसमें उनकी उर्दू, फारसी, संस्कृत और अरबी भाषा में लिखी गई कविताएँ शामिल हैं। यह ग्रंथ उनकी काव्यशैली, भाषा और विचारधारा को समर्पित है।

खुसरो फारसी के ही महान कवि नहीं थे, उन्हें अपनी मातृभाषा हिन्दी (हिन्दवी) से भी बहुत प्रेम था। खुसरो ने दिल्ली के आस-पास की बोली को जिसे आगे चलकर खड़ी बोली का नाम दिया गया संवारनें, सुधारने और साहित्यिक स्वरूप देने का सर्वप्रथम प्रयास किया। कालांतर में यही भाषा अपने परिनिष्ठित रूप में आधुनिक हिन्दी और उर्दू का आधार बनी और स्वतंत्र भारत के संविधान में इसी हिन्दी को देश की राजभाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ।

अमीर खुसरो ने ताउम्र अपना जीवन एक अच्छा इंसान होकर बिताया। उन्होंने पूरी उम्र कोई भी गलत कार्य नहीं किए। वह हर पल ईश्वर और अपनी कविताओं में ही डूबे रहते। हिंदी साहित्य में इनका भी बड़ा योगदान रहा है। वह हिंदी, हिन्दवी और फारसी में लिखने के लिए जाने जाते हैं। अमीर खुसरो को भारत का तोता की उपाधि दी गई थी। कहते हैं कि वह अपने गुरु निज़ामुद्दीन मुहम्मद बदायूनी सुल्तानुलमशायख़ औलिया से बहुत ज्यादा प्रभावित थे। जब औलिया साहब ने अपना देह त्यागा तो सबसे ज्यादा दुखी कोई हुआ तो वह अमीर खुसरो ही था। अमीर खुसरो को अपने गुरु को खोने से बड़ा सदमा लगा। कहते हैं कि कई दिन तक अमीर खुसरो अपने गुरु की समाधि पर ही सिर टिकाए सोया रहा। फिर एक दिन अक्टूबर 1325 में अमीर खुसरो ने भी अपने प्राण त्याग दिए।

ÑFùPáFÜFF

(E¶FáFFPÑF=+F)

1. बाला था जब सबको भाया, बड़ा हुआ कुछ काम न आया।
   खुसरो कह दिया उसका नाव, अर्थ करो नहीं छोड़ो गाँव।।
2. फ़ारसी बोली आई ना। तुर्की ढूँढी पाई ना।।
   हिन्दी बोली आरसी आए। खुसरो कहें कोई न बताए।।
3. पौन चलत वह दें बढ़ावे। जल पीवत वह जीव गँवावे।।
   है वह प्यारी सुंदर नार। नार नहीं पर है वह नार।।
4. सावन भादों बहुत चलत है, माघ पूस में थोड़ी।
   अमीर खुसरो यूँ कहें, तू बूझ पहेली मोरी।
5. गोल मटोल और छोटा-मोटा, हर दम वह तो जमीं पर लोटा।
   खुसरो कहें नहीं है झूठा, जो न बूझे अकिल का खोटा।

(ÙFPùáFFPÑF=+F)

6. एक मंदिर के सहस्त्र दर, हर दर में तिरिया का घर।
   बीच-बीच वाके अमृत ताल, बूझ है इनकी बड़ी महाल।।
7. पानी में निसदिन रहे, जाके हाड़ मास।
   काम करे तलवार, का फिर पानी में बास।।
8. चाम मांस वाके नहीं नेक, हाड़-हाड़ में वाके छेद।
   मोहि अचंभो आवत ऐसे, वामे जीव बसत है कैसे।।
9. एक थाल मोती से भरा। सबके सिर पर औंधा धरा।
   चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे।।
10. श्याम बरन पीताम्बर काँधे, मुरलीधर ना होए।
    बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझे कोय।।48।।

सूरदास के पद

सूरदास

कवि परिचय :

महाकवि सूरदास का जन्म 1478 ई. के आसपास मथुरा-आगरा मार्ग पर स्थित 'रुनकता' नामक गांव में हुआ था। कुछ लोगों का कहना है कि सूरदास जी का जन्म सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सूरदास वात्सल्य और श्रृंगार के श्रेष्ठ कवि के रूप में माने जाते हैं। पिता रामदास सारस्वत प्रसिद्ध गायक थे। सूरदास प्रांरभ में आगरा के समीप गऊघाट में रहते थे। वहीं उनकी भेंट श्री वल्लभाचार्य से हुई। उन्होंने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर कृष्णलीला के पद गाने का आदेश दिया। भारतीय साहित्य तो क्या, संभवत: विश्व-साहित्य में भी शायद ही कोई कवि वात्सल्य के क्षेत्र में उनके समकक्ष होंगे। यह उनकी ऐसी विशेषता है कि केवल इसी के आधार पर वे साहित्य-क्षेत्र में अत्यंत उच्च स्थान के अधिकारी माने जा सकते हैं। इनको वात्सल्य रस के सम्राट के रूप में माना जाता हैं। भक्त शिरोमणि सूरदास ने लगभग सवा-लाख पदों की रचना की थी। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की खोज तथा पुस्तकालय में सुरक्षित नामावली के अनुसार सूरदास के ग्रन्थों की संख्या 25 मानी जाती है जिनमें से कुछ निम्न हैं—

सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य-लहरी, नाग लीला, गोवर्धन लीला, पद संग्रह, सूर पच्चीसी।

सूरदास जी की मृत्यु के बारे में विद्वानों के अनेक मत हैं। लेकिन जिस मत में अधिकतर विद्वानों की सहमति है वह यह कि सूरदास जी की मृत्यु 1642 विक्रमी (1580 ईस्वी) में गोवर्धन स्थान के पास पारसौली ग्राम में हुई थी। सूरदास जी ने जिस स्थान पर देहावसान किया था वहां लोगों के द्वारा सूरश्याम मंदिर (सूर कुटी) की स्थापना की गई।

लैहौं री माँ चंद लहौंगौ।
कहा करौ जल-पुट भीतर कौ बाहर ब्यौंकि गहौंगौ।
यह तौ झलमलात झकझोरत कैसे कै जु चहौंगौ।
वह तौ निपट निकट ही दीखत करज्यों हौं न रहौंगौ।
तुम्हरौ प्रेम प्रगट मैं जानत बौराए न बहौंगौ।
सूरस्याम कहै कर गहि ल्याउँ ससि-तन ताप दहौंगौ।।

देखो माई या बालक की बात।
बन-उपबन सरिता सर मोहे देखत स्यामल गात।
मारग चलत अनीति करत है हठ करि माखन खात।
पीतांबर वह सिर तैं ओढ़त अंचल दै मुसकात।
तेरौ सौं कह कहौं जसोदा उरहन देति लजात।
जब हरि आवत तेरे आगै सकुचि तनक ह्वै जात।
कौन कौन गुन कहूँ स्याम के नैकु न काहु डारत।
सूर स्याम मुख निरखि जसोदा कहति कहा यह बात।।

मुरली तऊ गुपालहिं भावति।
सुनि री सखी जदपि नंदलालहिं नाना भाँति नचावति।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति कटि टेढ़ी ह्वै आवति।
अति आधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर-सज्जा कर-पल्लब सन पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल नैन नासा-पुट हम पर कोप कुपावति
सूर प्रसन्न जानि इक पल नहिं अधर तैं सीस डुलावति।।

ऊधौ, धनि तुम्हरौ व्यवहार।
धनि वै ठाकुर धनि वै सेवक, धनि तुम बर्तनहार।
आमहिं काटि बबूर लगावन, चंदन कौं कुशबार।
हमकौं जोग, भोग कुबजा-कौं, ऐसी समझ तुम्हार।

तुम हरि, पढ़े चातुरी-विद्या, निपट कपट चटसार।
पकरत साहु, चोर कौं छाँड़त, चुगलनि कौ एतबार।
समुझि न परत तिहारी ऊधौ, हम ब्रजनारि गँवार।
सूरदास कैसे निबहैगी अंधधुंध सरकार।।

बिनु गुपाल बैरिनि भई कुंजैं।
तब ये लता लगतिं अति सीतल,
अब भइँ विषम ज्वाल की पुंजैं।
वृथा बहति जमुना, खग बोलत,
वृथा कमल फूलैं, अलि गुंजै।
पवन, पानि, धनसार, सजीवन,
दधिसुत-किरन भानु भइ भुँजैं।
ए ऊधौ! कहियो माधौ सौं,
मदन मारि कीन्ही हम लुंजै।
सूरदास प्रभु कौ मग जोवत,
अँखियाँ भइँ बरन ज्यौं गुंजैं।।

बिहारी के दोहे

बिहारी

कवि परिचय :

बिहारी हिंदी के रीति काल के प्रसिद्ध कवि थे। बिहारीलाल का जन्म संवत् 1603 के आसपास ग्वालियर में हुआ। वे जाति के माथुर चौबे (चतुर्वेदी) थे। उनके पिता का नाम केशवराय था। इनके गुरु आचार्य केशवदास थे। कहा जाता है कि वे मुगल बादशाह जहाँगीर और शाहजहाँ के कृपापात्रों में से एक थे। सन् 1935 में वे जयपुर के राजा जयसिंह के दरबार में गए जहाँ उन्हें आश्रय व प्रत्येक दोहे पर एक स्वर्ण मुद्रा का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। बिहारी की कविता का मुख्य विषय श्रृंगार है। उन्होंने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का वर्णन किया है। संयोग पक्ष में बिहारी ने हावभाव और अनुभवों का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण किया हैं। बिहारी ने सात सौ से कुछ अधिक दोहों की रचना की, जिनका संग्रह 'बिहारी सतसई' के नाम से हुआ है। एक-एक दोहे में अनेक भावों को सफलतापूर्वक भर देना इन्हीं का काम था। इसीलिए कहा जाता है कि बिहारी ने 'गागर में सागर' भरा है। अलंकार, नायिका-भेद, प्रकृति-वर्णन तथा भाव, विभाव, अनुभाव, संचारीभाव आदि सब कुछ अड़तालिस मात्राओं के एक छोटे से छन्द दोहे में भरकर इन्होंने काव्य-कला का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

बिहारी ने केवल एक ही ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' की रचना की। उसी एक कृति ने इनको हिन्दी साहित्य में अमर कर दिया। 'बिहारी सतसई' में नीति, भक्ति और श्रृंगार सम्बन्धी दोहों का संकलन है। 'बिहारी सतसई' एक श्रृंगार रसप्रधान मुक्तक काव्य-ग्रन्थ है। श्रृंगार की अधिकता होने के कारण बिहारी मुख्य रूप से श्रृंगार रस के कवि माने जाते हैं। इन्होंने छोटे-से दोहे में प्रेम-लीला के गूढ़-से-गूढ़ प्रसंगों को अंकित किया है। इनके दोहों के विषय में कहा गया है-

सतसैया के दोहरे, ज्यौं नाविक के तीर।
देखने में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।।

अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद बिहारीलाल राजदरबार छोड़कर वृन्दावन चले गये और वहीं सन् 1663 ईस्वी (संवत् 1720 वि०) में इनका निधन हो गया था।

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित-दुति होइ।। 1।।

तो पर बारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी, ह्वै उरबसी समान।। 2।।

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल।
अली, कली ही सौं बँध्यों, आगैं कौन हवाल।। 3।।

पत्रा ही तिथि पाइयै, वा घर कैं चहुँ पास।
नितप्रति पून्यौई रहे, आनन-ओप-उजास।। 4।।

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़े स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्जलु होई।। 5।।

मोहन मूरति स्याम की अति अद्‌भुत गति जोइ।
बसतु सु चिर-अंतर, तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ।। 6।।

दृग उरझत-टूटत कुटुम, जुरत चतुर चिर प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियैं, दई, नई यह रीति।। 7।।

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौहनु हँसै, दैन कहै नटि जाइ।। 8।।

इन दुखिया अँखियानु कौं, सुखु सिरज्यौई नांहि।
देखै बनै न देखते, अनदेखे अकुलाँहि।। 9।।

चिरजीवौ जोरी, जुरै क्यौं न सनेह गंभीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के वीर।। 10।।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की मुकरियां

भारतेंदु हरिश्चंद्र

कवि परिचय :

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी का जन्म सन् 1850 ई. में काशी के एक वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता गोपालचंद्र बड़े काव्य रसिक व्यक्ति थे। बचपन में ही माता पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण उन्होंने घर पर ही हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी तथा बांग्ला का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। भारतेंदु के परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। उन्होंने देश के विभिन्न भागों की यात्रा की और वहां समाज की स्थिति और रीति-नीतियों को गहराई से देखा। भारतीय नवजागरण की मशाल थामने वाले भारतेंदु ने अपनी रचनाओं के ज़रिए गरीबी, गुलामी और शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद की। हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। सिर्फ़ पैंतीस वर्ष की उम्र पाने वाले भारतेंदु की अनेक विधाओं पर पकड़ थी। वे एक गद्यकार, कवि, नाटककार, व्यंग्यकार और पत्रकार थे। उन्होंने 'बाला बोधिनी' पत्रिका, 'हरिश्चंद्र पत्रिका' और 'कविवचन सुधा' पत्रिकाओं का संपादन किया। भारतेन्दु ने सिर्फ 18 वर्ष की उम्र में 'कविवचनसुधा' पत्रिका निकाली, जिसमें उस वक्त के बड़े-बड़े विद्वानों की रचनाएं प्रकाशित होती थीं। हिंदी में नाटकों की शुरूआत भारतेन्दु हरिश्चंद्र से मानी जाती है। नाटक भारतेन्दु के समय से पहले भी लिखे जाते थे, लेकिन बाकायदा तौर पर खड़ी बोली में नाटक लिखकर भारतेन्दु ने हिंदी नाटकों को नया आयाम दिया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य के एक पूरे युग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसे साहित्य में 'भारतेंदु युग' के नाम से जाना जाता है। भारतेंदु जी की मुकरियां 'लोक जीवन' में खूब प्रचलित हुईं।

मुकरी एक बहुविकल्पी शब्द है, जिसका लक्ष्य मनोरंजन के साथ-साथ बौद्धिक कुशलता की परीक्षा भी होती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र अपनी मुकरियों में मनोरंजन तो करते ही थे, अपने समय में अंग्रेजों की नस्लीय सोच पर प्रहार भी करते थे।

शरीर के अस्वस्थ होने एवं दुश्चिंताओं के कारण मात्र 35 वर्ष की अल्पायु में 6 जनवरी 1885 को भारतेंदु हरिश्चंद्र का निधन हो गया।

मुकरियां

सब गुरूजन को बुरो बतावै

अपनी खिचड़ी अलग पकावै
भीतर तत्व न झूठी तेजी
क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेजी। 1।

धन लेकर कछु काम न आव
ऊँची नीची राह दिखाव
समय पड़े पर सीधै गूंगी
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि चुंगी। 2।

सतएँ अठएँ मों घर आवै
तरह तरह की बात सुनावै
घर बैठा ही जोड़ै तार
क्यों सखि सज्जन नहिं अखबार। 3।

भीतर भीतर सब रस चूसै
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै
जाहिर बातन मैं अति तेज
क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेज। 4।

रूप दिखावत सरबस लूटै
फंदे मैं जो पड़ै न छूटैं
कपट कटारी जिय मैं हुलिस
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस। 5।

मुँह जब लागै तब नहिं छूटै
जाति मान धन सब कुछ लूटै।।
पागल करि मोहिं करे खराब
क्यों सखि सज्जन नहिं सराब। 6।

रूप दिखावत सरबस लूटै
फंदे मैं जो पड़ै न छूटै।।
कपट कटारी जिय मैं हुलिस
क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस। 7।

साहित्य 'ख'

गद्य

विज्ञान में जीवन

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

लेखक परिचय :

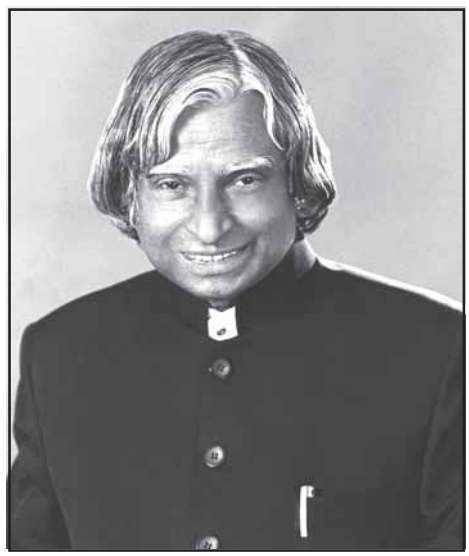

ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का जन्म तमिलनाडु के रामेश्वरम के धनुषकोडी गांव में 15 अक्टूबर 1931 को हुआ था। उनका बचपन संघर्षों से भरा रहा है। कलाम साहब हमेशा सीखने की कला को महत्व देते थे। वह बचपन में अखबार बेचते थे क्योंकि उनके परिवार के पास ज्यादा पैसे नहीं थे और न ही उनके पिता जैनुलाब्दीन ज्यादा पढ़े लिखे थे। अब्दुल कलाम भारत के ग्यारहवें राष्ट्रपति रहे हैं। वे एक गैरराजनीतिक व्यक्ति रहे हैं फिर भी विज्ञान की दुनिया में चमत्कारिक प्रदर्शन के कारण इतने लोकप्रिय रहे कि देश ने उन्हें सिर माथे पर उठा लिया तथा सर्वोच्च पद पर आसीन कर दिया। एक वैज्ञानिक का राष्ट्रपति पद पर पहुंचना पूरे विज्ञान जगत के लिए सम्मान तथा प्रतिष्ठा की बात थी। कहते हैं कि जो व्यक्ति किसी क्षेत्र विशेष में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करता है, उसके लिए दूसरे क्षेत्रों में भी सब कुछ आसान और सहज हो जाता है। डॉ. कलाम इस बात को चरितार्थ करते हैं। भारत को अंतरिक्ष में पहुंचाने तथा मिसाइल क्षमता प्रदान करने का श्रेय डॉ. कलाम को जाता है। उनके द्वारा सफलतापूर्वक विकसित अग्नि और पृथ्वी जैसी बैलिस्टिक मिसाइलों ने राष्ट्र की सुरक्षा को मजबूती प्रदान की है। डॉ. कलाम अविवाहित नागरिक रहे और इनकी जीवन-गाथा किसी रोचक उपन्यास के नायक की कहानी से कम नहीं है। चमत्कारिक प्रतिभा के धनी डॉ. कलाम का व्यक्तित्व इतना उन्नत है कि वह सभी धर्म, जाति एवं सम्प्रदायों के व्यक्ति नज़र आते हैं। वे एक ऐसे सर्वस्वीकार्य भारतीय हैं जो देश के सभी वर्गों के लिए 'एक आदर्श' बन चुके हैं। विज्ञान की दुनिया से होकर देश का प्रथम नागरिक बनना कोई कपोल-कल्पना नहीं है बल्कि यह एक जीवित प्रणेता की सत्यकथा है। डॉ. कलाम ने "विंग्स आफ फायर", "इग्नाइटेड माइंड्स", इंडिया माय ट्रीम, साइंटिक्ट टू प्रेसिडेंट, माईजर्नी जैसी कई सुप्रसिद्ध पुस्तकें लिखी हैं। 27 जुलाई 2015 को भारतीय प्रबंधन संस्थान (IIM) शिलांग में व्याख्यान देते समय हृदय गति रुकने से अचानक उनका निधन हो गया।

विज्ञान में जीवन

सन् 1998 में भारत ने दूसरा परमाणु परीक्षण पोखरण में किया। मैं इसके विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। मुझे विभिन्न सम्मान व उपाधियाँ दी गईं। कई वर्षों बाद तथा राष्ट्रपति के कार्यकाल के बाद भी एक उपाधि मेरे साथ रही—'मिसाइल मैन'। इस नाम से बुलाए जाने पर मुझे अच्छा लगता है। यह विज्ञान जगत् की शख्सियत की बजाय किसी बच्चे का कारनामा लगता था। इस देश की जनता ने कई बार मुझ पर अपार प्रेम और सम्मान की बारिश की है। मेरे लिए इंजीनियरिंग, रॉकेट और विज्ञान का क्षेत्र मेरी जीवन-यात्रा की चरम सीमा को प्रकट करता है। इस यात्रा का शुरुआती समय उस समय लौट आता है—जब मैं इतने पीछे की ओर जाकर सोचता हूँ। मैं अचंभित हो जाता हूँ कि क्या यह मेरे साथ हुआ ? क्या यह किसी पुस्तक की एक कहानी है, जिसे मैंने पढ़ा है ? ये सभी बातें मुझे एक ऐसा इनसान बनाने की ओर ले जाती हैं, जो वास्तव में विज्ञान का रास्ता चुनता है। जो उसे याद आ रहा है, वह नदी पर डेल्टा के छोर से की गई यात्रा है, जो दूर, बहुत दूर धारा के बहाव में मुझे अंत तक पहुँचाती है। जैसे मैं एक छोटा लड़का हूँ और अपने जीवन के रास्ते की खोज करने की कोशिश कर रहा हूँ।

मेरी शिक्षा सही मायनों में रामेश्वरम को छोड़कर उच्च शिक्षा के लिए रामनाथपुरम जाने पर आरंभ हुई, जिसके विषय में मैंने पहले भी लिखा है। यह पहली बार हुआ था, जब मैं रामेश्वरम, अपनी माँ और अन्य जाने-पहचाने सुरभित घेरे से बाहर निकला था। मैं एक शरमीला व छोटा कस्बाई लड़का था, जो अधिक बोलने से डरता था। श्वार्ट्ज हाई स्कूल में मेरा पहली बार विज्ञान के अजूबे से सामना हुआ, जो मेरे दिमाग में उतर गया। इस स्कूल में एक अध्यापक आदरणीय इयदुराई सोलोमन थे, जो उदार व खुले विचारोंवाले थे और मेरी प्रतिभा से प्रभावित भी थे। वे मेरे मार्गदर्शक बने।

मैं आकाश में पक्षियों की उड़ान देख मोहित हो जाता था और घंटों तक उनके उड़ने के अंदाज को तथा आकाश मार्ग में आगे बढ़ते रहने को देखता रहता था। मुझमें छोटी सी उम्र में ही उड़ने और उन पक्षियों में से एक होने की इच्छा जन्म ले चुकी थी। एक दिन जब मैं उड़ान की भौतिकी पढ़ रहा था, तब आदरणीय इयदुराई सोलोमन हमारे विद्यार्थियों के समूह को समुद्र-तट पर ले गए। वहाँ वे हमें पक्षियों की ओर ध्यान देने के लिए कहते हैं और समुद्र के किनारे खड़े हो जाते हैं, जहाँ लहरों के सारस और सीगलों का शोर सुनाई पड़ता है। वे समुद्री धाराओं, वायु गतिकी, वैमानिकी तथा वायु बहाव की नई दुनिया को हमारे सामने खोलते हैं। मैं उन पंद्रह वर्षीय विद्यार्थियों के समूह में से एक था, शायद तब उसके लिए वह विज्ञान का पाठ सबसे महत्त्वपूर्ण था। अचानक उस समय मेरा मोहित होनेवाला विषय पूरी तरह से स्पष्ट और पारदर्शक हो गया था। यह इस प्रकार था, मानो मैं बादल से घिरी एक खिड़की के पीछे देख रहा था! अब खिड़की खुल गई और मैं खुली आँखों से इस विशाल संसार को देखने लगा। मुझे अधिक जानकारी प्राप्त करने की प्यास लग रही थी।

मेरा मार्ग विद्यालय में ही बना और फिर बाद में सेंट जोसेफ कॉलेज, तिरुचिरापल्ली में। वहाँ कई प्रकार के सुनहरे अवसर मेरा इंतजार कर रहे थे। मैंने पहले ही सोच लिया था कि मुझे अपना दिमाग और आँखें खुली रखनी होंगी, अपने दिमाग को दुरुस्त व केंद्रित करना होगा। यहाँ मेरे रास्ते में कुछ भी ऐसा नहीं होगा, जिसे मैं सीखकर नहीं कर सकता। जब सेंट जोसेफ में प्रो. चिन्नादुरई और प्रो. कृष्णमूर्ति ने उप-परमाणु भौतिकी की संकल्पना बताई, तब मैंने पहली बार संसार के इस छुपे हुए विषय के बारे में और हमारे चारों ओर इसके क्षरण हो जाने पर सोचना आरंभ कर दिया। मैंने पदार्थों के अर्ध जीवनकाल और रेडियोधर्मी क्षय के बारे में जाना और एकाएक संसार उन ठोस निश्चितताओं से परे नजर आने लगा, जिनसे वह बना हुआ था। मैं विज्ञान एवं आध्यात्मिकता के द्वैत भाव की ओर भी सोचने लगा। क्या यह सब एक-दूसरे से अलग थे, जैसे वे दिख रहे थें ? अगर उप-परमाणु अंश का स्तर अस्थायी और विघटित हो जाता है, तब यह सब मानव जीवन की अवस्था से कैसे दूर किया जाता था ? विज्ञान ही समस्त प्राकृतिक घटनाक्रम का उत्तर दे सकता है और यह आध्यात्मिकता ब्रह्मांड की समूची संरचना में हमारे स्थान को समझने में हमारी सहायता करती है। जब कोई व्यक्ति गणित और सूत्र के ठोस निश्चित स्वरूप को देखता है, यही आध्यात्मिकता अनुभूति से मन को उदार बनाकर एवं व्यक्ति के स्व के भीतर गहराई में उतरकर ऐसा करती है। यहाँ मुझे मेरी विज्ञान की दुनिया पिताजी की अध्यात्म की दुनिया में समीपता नजर आने लगी थी।

मैं तिरुचिरापल्ली से एरोनॉटिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए एम.आई.टी. (मद्रास प्रौद्योगिकी संस्थान) गया। यहाँ काम में न लाए जा रहे दो विमान रखे थे। यह दृश्य मानव उड़ान को लेकर मेरी इच्छा पूरी कर रहा था। मैं पतंगे की तरह इस विषय की ओर आकर्षित हुआ और महसूस किया कि यहाँ मेरा भविष्य या जीवन का लक्ष्य तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक मैं उड्डयन से जुड़ी गतिविधियों व प्रक्रियाओ की तह तक नहीं जाता। एम.आई.टी. में तीन शिक्षकों ने मेरी अभिलाषा को साकार किया और मुझे वास्तविकता के धरातल पर ले गए। इनमें ऑस्ट्रियाई प्रोफेसर स्पॉण्डर ने मुझे वायुगतिकी, प्रो. के.ए.वी. पडालाई ने एयरी-स्ट्रक्चर डिजाइन और विश्लेषण तथा प्रो. नरसिंहा राव ने सैद्धांतिक वायुगतिकी का अध्ययन कराया।

ये तीन शिक्षक थे, जिनके कारण मुझमें वायुगतिकी के प्रति आकर्षण जाग्रत् हुआ और जब स्पष्ट होता गया कि कैसे और क्यों वायु में वस्तुएँ गतिमान होती हैं, मैं अपने आप में जटिल, गतिशील अस्थायी दुनिया, गति के प्रकार एवं उलझी लहरों के महाजाल की खोज में खो गया। ठीक इसी समय मुझे वायुयान के आकार-प्रकार स्पष्ट हुए और मैंने पूरे उत्साह से बाई प्लेन, एकतल वायुयान, पुच्छ-रहित विमान और कई अन्य अध्ययन के विषयों को पढ़ना शुरू कर दिया।

यहाँ कई प्रकार की घटनाएँ घटित हुईं। जब मैं एम.आई.टी. में था, मैंने स्वयं विज्ञान की दुनिया की खोज शुरू कर दी। यह सब उस समय हुआ, जब देश की प्रगति में प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू वैज्ञानिक विकास पर विशेष बल दे रहे थे। मेरे चारों ओर, खासतौर पर शैक्षिक संस्थान में, मैंने यह पाया कि हमें सोचने के पारंपरिक तरीके को पीछे छोड़कर आगे बढ़ना होगा, इस नए वातावरण का लाभ उठाना होगा। उत्तम होगा कि हम वैज्ञानिक तरीकों से ज्ञान की खोज करें। मैं रामेश्वरम के धार्मिक वातावरण में पला-बढ़ा

था, इसलिए मेरे लिए ऐसा करना बहुत कठिन था, बल्कि मैं विज्ञान और आध्यात्मिकता के बीच अनिवार्य अभिन्नता के सूक्ष्म एहसास को साकार रूप देने का प्रयास करने लगा। मैं यह नहीं मानता कि प्रत्यक्ष संवेदी धारणा ही केवल सच्चाई और ज्ञान स्रोत हैं। मैं यह जान पाया कि आध्यात्म के क्षेत्र में वास्तविक सच्चाई सांसारिक उपकरणों पर आधारित होती है और सच्चा ज्ञान अपनी आंतरिक खोज का अंश होता है। अब मैं अधिक-से-अधिक किसी अन्य प्रकार की दुनिया का हिस्सा बनता जा रहा था—जो प्रमाणों, प्रशिक्षण और सूत्रों से प्रभावित है।

आखिरकार मैं एम.आई.टी. (मद्रास प्रौद्योगिकी संस्थान) से इंजीनियरिंग की डिग्री के साथ बाहर निकला। अब तक मैंने मिसाइल और रॉकेट की दुनिया के बारे में बहुत अधिक जान लिया था और समझ गया था कि जिस दिशा में मैं जा रहा हूँ, यह मेरी प्रगति और भविष्य का हिस्सा है। जब मैं यह सब जान गया तो इस संसार की खोज के लिए द्वार खुल गए और अब मैं आकाश में ऊँची उड़ान भरने का कार्य कर रहा था।

कई वर्षों बाद डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) में मैं विभिन्न समूहों का हिस्सा बन गया। यह हॉट कॉकपिट क्षेत्र कहलाता था, जहाँ प्लेटफॉर्म से जाने और सीधा उतरने की प्रणाली एवं रूपरेखा तैयार की जाती थी। यह सब बंगलौर के 'एरोनॉटिकल डेवलपमेंट एस्टेब्लिशमेंट' (ए.डी.ई.) में होता था। वहाँ मैंने अनुभव किया कि मुझे कुछ हटकर करने का पहला बड़ा अवसर मिला है। यह मेरे कॅरियर को उन्नत व विकसित करने का महत्त्वपूर्ण समय है। ए.डी.ई. में मैंने प्रारंभिक अध्ययन 'भूमिगत दक्षता सामग्री' पर किया। इस प्रकार एक स्वदेशी हॉवर क्राफ्ट प्रोटोटाइप आवर्ती ग्राउंड इक्यूपमेंट मशीन (जी.ई.एम.) के रूप में डिजाइन करके तैयार करना था। ए.डी.ई. के निदेशक डॉ. मेदीरत्ता ने चार लोगों की एक टीम बनाई और मुझे उसका प्रमुख बनाया गया।

यह हमारे लिए एक भारी चुनौती थी। इस प्रकार की प्रौद्योगिकी के लिए कोई साहित्य नहीं था, कोई अनुभवी व्यक्ति नहीं था, जिससे हम सलाह ले सकते थे। इसके लिए कोई पहले से निर्मित रूपरेखा या मानक नहीं था, जिसका हम प्रयोग कर सकते; बल्कि इस कार्य के लिए हमारे समूह को आगे बढ़ने के लिए ऐसा कुछ भी नही था, केवल इस जानकारी के अलावा कि हमें सफल फ्लाइंग मशीन बनानी है। यह स्तंभित करनेवाली चुनौती थी। तब मैंने सोचा कि इंजीनियरों ने जब तक मशीन नहीं बनाई, उन्हें अकेले विमान उड़ाने की अनुमति कैसे दी जा सकती है? परियोजना को पूरा करने के लिए हमें तीन वर्ष दिए गए और हमने पहले के कई महीने अपने कदम जमाने की कोशिश में ही लगा दिए। तब मैंने एक लक्ष्य तय किया कि हमें सिर्फ उपयुक्त हार्डवेयर के साथ आगे बढ़ने की आवश्यकता है और जैसे-जैसे वे सामने आते जाएँ, उनका प्रयोग किया जाए। इस बड़ी चुनौती के बावजूद यह परियोजना मेरे मन के करीब थी और मेरी कल्पना ऊँची उड़ान भर रही थी। कई महीनों के बाद हमने रूपरेखा की प्रक्रिया के विकास में गति पकड़ ली।

अब मैं अधिक दृढ़ निश्चयी एवं आत्मविश्वास से परिपूर्ण था, लेकिन छोटे कस्बे की मध्यम वर्ग की जड़ें अभी भी मेरी आत्मा में बसी थीं। मैं ऐसी दुनिया में आ गया था, जहाँ दूसरों को कार्य करने का निर्देश

देना था; जबकि मुझे वरिष्ठ सहयोगियों के सवाल और शंकाओं का भी सामना करना था। मुझपर ऐसा प्रभाव पड़ रहा था, मानो लोहे को आग में तपाया जा रहा हो! मेरे जैसे लोग आंतरिक दृष्टि से संकोची होते हैं, जो शहरी साथियों से अलग पृष्ठभूमि से आते हैं। वे तब तक सामने नहीं आना चाहते, जब तक कोई उन्हें केंद्र बिंदु की ओर धकेलता नहीं हैं। मैं समझ गया था कि मुझे वह 'पुश' मिल चुका है और मैं हॉवर क्राफ्ट परियोजना की सफलता के लिए अपना ज्ञान व श्रम लगाने के लिए कृत संकल्प हो चुका था। संगठन के भीतर ऐसे अनेक व्यक्ति थे, जो इस परियोजना की प्रासंगिकता तथा इस पर समय तथा धन लगाने के औचित्य पर प्रश्न उठाते थे। वे मेरी भूमिका पर सवाल उठा रहे थे, लेकिन मेरी टीम और मैं केवल अपना सिर नीचे किए चुपचाप काम करते रहे। हम धीरे-धीरे हर अवस्था से गुजरते गए और प्रोटोटाइप आकार लेने लगा, जैसे कि पहले एम.आई.टी. में प्रो. श्रीनिवासन ने मेरा डिजाइन कार्य रदद कर दिया था और मैं लगातार दो रात कार्य करता रहा था, मैं पुनः उसी स्थिति में आ चुका था। मेरा मन अविश्वसनीय रूप से लचीला हो गया था। जब मेरा मन-मस्तिष्क खुलता था, तो कोई बाधा आड़े नहीं आ सकती थी। खुद पर विश्वास ऐसी परिणति है, जिसे आपसे कोई नहीं छीन सकता।

इस परियोजना को 'नंदी' नाम दिया गया और रक्षा मंत्री वी.के. कृष्ण मेनन ने हमें आशीर्वाद दिया। वह दृढ़ विश्वास रखते थे कि यह भारत में रक्षा उपकरणों के विकास की शुरुआत है। वे उत्कंठा से हमारे कार्य को देख रहे थे और एक वर्ष के बाद वे हमारी कार्य-प्रगति का परीक्षण कर रहे थे। उस समय डॉ. मेदीरत्ता से उन्होंने कहा, ''कलाम और उसकी टीम को कामयाबी अवश्य मिलेगी''।

हम सचमुच कामयाब हो गए थे। तीन वर्ष बीतने से पहले ही हमने पूरी तरह से कार्यशील प्रोटोटाइप तैयार कर लिया था और हम मंत्रीजी को दिखाने के लिए तैयार थे। कृष्ण मेनन 'नंदी' से उड़ान भर रहे थे और मैं उसे उड़ा रहा था। हालाँकि सतर्कता की दृष्टि से कुछ और ही व्यवस्था आवश्यक थी और मैंने पहली बार आनंद एवं कुछ करने की अनुभूति महसूस की। यह हमारे ज्ञान और टीम-वर्क का फल था। इस देश में पहली बार ऐसा दुआ। दुर्भाग्यवश, 'नंदी' की कहानी सुखांत नही रही। जब कृष्ण मेनन अपने पद पर नहीं थे, तब उनके उत्तराधिकारियों ने इस हॉवर क्राफ्ट के उपयोग से ज्यादा उम्मीद नहीं लगाई। वह विवादास्पद विषय बन गया और अंततः वह परियोजना बंद हो गई। यदि इस धरती पर कोई मुझे उतारता तथा दिखाता कि कभी कभी आकाश ही हमारी सबसे ऊपरी सीमा नहीं होती है तो यह कटु सबक मिलता कि अकसर आपसे भी ज्यादा बड़ी ताकत होती है, जो आपके काम को अंजाम देती है। मुझे अन्य सबक यह मिला कि कुछ क्षेत्रों को मैं प्रभावित नहीं कर सकता, परंतु मैं निश्चित रुप से भरसक प्रयास करता और अपनी पूरी क्षमता से करता और कौन जानता है कि हमारे कार्यक्रम का क्या फल मिलेगा? मैं अभी भी 'नंदी' की निराशा से उबरने का प्रयास कर रहा था। घटनाक्रम के परिणामस्वरूप 'TIFR' (Tata Institute of Fundamental Research) के प्रो. एम.जी.के. मेनन इसे देखने आए तथा इसके बारे में सवाल पूछे। अंततः मैं रॉकेट इंजीनियर के रूप में 'इन्कोस्पार' (INCOSPAR) में काम करने लगा और मुझे डॉ विक्रम साराभाई के मार्गदर्शन में काम करना था।

'इन्कोस्पार' (INCOSPAR) के बाद मैं 'इसरो' (ISRO) में गया। वहाँ मुझे विभिन्न प्रकार के रॉकेट के विकास का कार्य सौंपा गया था और मुझे अंतरिक्ष वाहन के एक रॉकेट से दूसरे रॉकेट के चारों

ओर की दूरी की पहुँच तक उपग्रह के वाहन को पहुँचाने का कार्य दिया गया। वे डॉ साराभाई ही थे, जिनकी देख-रेख में भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम के विकास और विभिन्न-विकासात्मक कार्य साथ-साथ हो रहे थे। मैं सौभाग्यशाली था, जो इस परियोजना का हिस्सा बना। मैं मानता था कि एस.एल.वी में बहुत जटिल चुनौती सामने आई थी। मैं उपग्रहों को कक्षा में भेजनेवाले लॉञ्च व्हीकल के विकास की बड़ी परियोजना को निर्देशित कर रहा था। इससे हम न केवल एक प्रौद्योगिकीवाले देश बन जाते बल्कि दूसरे देशों के उपग्रहों को कक्षा में स्थापित करके धन भी कमा सकते थे।

मैंने अपनी पुस्तक 'विंग्स ऑफ फायर' में एस.एल.वी. की निर्माण यात्रा का विश्लेषण किया है। यह कई कारणों से अत्यधिक जटिल यात्रा थी। जब एक परियोजना विकसित होती है, तब लगातार कठिनाइयाँ आती हैं। हम एक बजट देते थे-समय और स्रोत दोनों रूपों से। यह हमारी जिम्मेदारी होती थी कि हमें इसी बजट में अपने परिणाम हासिल करने है। यह मेरे लिए एक तनाव का समय था। अंतरिक्ष कार्यक्रम के तीन वर्षो में, मैंने अपने तीन प्रिय व्यक्तियों-अहमद जलालुद्दीन, अपने पिताजी व अपनी माताजी को खो दिया था। लेकिन यह समय स्वयं को पूरी तरह से काम में डुबो देने का था और मुझे परिणाम पर ध्यान केंद्रित करना था। मुझे परियोजना को सफलता तक लाना था।

अगर मैं आज पूछता हूँ, कि सबसे बड़ी सीख क्या थी, जो मैंने एस.एल.वी के विकास से सीखी है, तो मैं कहूँगा कि यहाँ तीन कारण है—पहला, जब मुझे देश के विकास में विज्ञान, तकनीकी खोज और इंजीनियरिंग की भूमिका नजर आती थी। एस.एल.वी पर वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और इंजीनियरों के कई दल कार्यरत थे। एक टीम लीडर के रूप में मेरा कार्य रेखाओं को बनाना और निर्देशन देने जैसा था। मैंने सीखा कि विज्ञान असीमित तथा गवेषणात्मक है। इसमें उत्तर ढूँढ़ना यात्रा कर रहे यात्री के समान है, इसमें यात्रा करते हुए सबका विशलेषण करके एक दिन सब संभव हो जाएगा। विज्ञान एक आनंद और जुनून है। दूसरी ओर विकास एक बंद फंदा है। यह वैज्ञानिकों द्वारा किया गया कार्य है और यह कुछ कदम आगे ले जाता है। यह गलतियों की अनुमति नहीं देता। सुधार और प्रोन्नति में गलतियों से सीखता है। तब जहाँ वैज्ञानिक हमें राह दिखाता है और संभावनाओं को खोलता है, हम स्वदेशी लॉञ्च व्हीकल के विकास में सफल होते हैं। एक परियोजना की सफलता व्यावहारिक होती है। यह जरूरी होता है कि सभी भागों को आगे-पीछे और केंद्रित करके ऑरकेस्ट्रा के समान कार्य किया जाए।

दूसरा सबक मुझे यह मिला कि प्रतिबद्धता के साथ काम करना। उन दिनों, जब मैं परियोजना के अलावा अपने आप में कुछ अन्य सोच रहा था, यहाँ मेरी तरह अन्य भी थे, जो कड़ी मेहनत में वही विश्वास और उत्साह रखते थे। अब मेरे लिए कभी भी यह नहीं कहा जा सकता कि बुद्धिमानी के शब्द अधिक मूल्यवान् हैं, जिसे वेनंहर वॉन ब्राउन द्वारा कहा गया। रॉकेट के क्षेत्र में वॉन ने वी-2 मिसाइल तैयार की, जिसने द्वितीय विश्व युद्ध के समय लंदन का विनाश किया था। बाद में उन्होंने नासा (NASA) के रॉकेट कार्यक्रम में प्रवेश किया, जहाँ वे जुपिटर मिसाइल बनाते थे, जो पहली लंबी दूरी की मिसाइल थी। वे वैज्ञानिक, डिजाइनर, इंजीनियर, प्रशासक और एक प्रौद्योगिकी प्रबंधक थे। वे 'आधुनिक रॉकेट की दुनिया' के जनक माने जाते थे। जब वे भारत आए, मुझे उनके साथ उस समय उड़ान भरने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जब मैं उन्हें लेने चेन्नई गया और थुंबा तक साथ रहा। वे मुझसे कहते थे कि कार्य की प्रकृति की

गहराई दिमाग में स्थिर है—''तुम्हें हमेशा यह याद रखना चाहिए कि हमें सिर्फ सफलता के लिए ही निर्माण नहीं करना है, हमें असफलता पर भी कार्य करना है।'' वैज्ञानिक के पेशे के लिए बहुत कड़ी मेहनत और समर्पण की आवश्यकता होती है। वे कहते हैं, ''रॉकेट के क्षेत्र में कड़ी मेहनत ही काफी नहीं है। यह एक खेल नहीं है, जहाँ हम सिर्फ कुछ घंटों में ही कड़ी मेहनत ले आएँ। यहाँ तुम्हारे पास सिर्फ एक लक्ष्य नहीं है, बल्कि तुम्हें जल्द-से जल्द अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सही नीति की आवश्यकता है।''

पूर्ण प्रतिबद्धता ही कड़ी मेहनत नहीं है। इसमें पूर्ण रूप से सक्रिय होना भी है। यह लक्ष्य की पृष्ठभूमि के विषय में है। अपके सामने लक्ष्य होना चाहिए कि आप कड़ी मेहनत की बदौलत परिणाम से कुछ अलग बना सकें। मैंने इन शब्दों में विश्वास करने के साथ-साथ इन्हें अपनाया भी-''रॉकेटरी को अपना पेशा नहीं बनाना है, अपना लक्ष्य व धर्म बनाना है।'' जीवन के इस क्षण में मैंने एस.एल.वी की परियोजना के अलावा सबकुछ रोक दिया था। मैंने तनाव पर काबू पाना सीख लिया था। यही एक रास्ता था, जिसके द्वारा आपका मन-मस्तिष्क उन मुश्किलों को झेल सकता था, जो आपके लक्ष्य के रास्ते में बिखरी होती हैं, जिस पर परिणाम निर्धारित होता है। मेरा विश्वास था कि हमें ऐसी मुश्किलों की आवश्यकता है, जिनसे किसी भी लक्ष्य के आखिरी मोड़ पर सफलता का आनंद लिया जा सके।

यह एस.एल.वी परियोजना मुझे तीसरे सबक की ओर ले जाती है, जो हमें बाधाओं के साथ संबंथ स्थापित करने और सीखने योग्य बनाती है। यह ज्ञात तथ्य है कि एस.एल.वी-3 का पहला प्रायोगिक परीक्षण एक दुर्घटना में परिणत हो गया था और लॉञ्च व्हीकल समुद्र में गिर गया था। पहला चरण पूर्ण सफल रहा था। यह दूसरी अवस्था थी, जब चीजें नियंत्रण के बाहर चली गई थीं। यह उड़ान 317 सेकंड के बाद समाप्त हो गई थी। पेलोड के साथ चौथी अवस्था को मिलाकर, व्हीकल समुद्र में टकराने के बाद बिखरकर श्रीहरिकोटा में 560 किलोमीटर तक चला गया था।

मैं घटना के बदलावों पर विश्वास करके सुन्न रह गया था। हाँ, मैने असफलता का अनुभव किया, परंतु यह कड़ी मेहनत का दु:खांत होने वाला था, जिससे उबरना मुश्किल था। मेरे दिमाग में विचारों की घुमड़ती श्रृंखला के लिए कोई जवाव नहीं था-क्या गलत हो रहा था? मेरी शारीरिक शक्ति क्षीण हो रही थी, जैसे मैं तनाव के साथ बाहर आ रहा था और अब यहाँ कुछ भी अपने लिए कहने को नहीं था या मेरे चारों ओर के किसी अनुभव से शून्य होना। आखिरकार मेरे सारे विचार सो गए थे। 'मुझे विश्लेषण की राह पर जाने से पहले सोना होगा'-मैंने अपने आपसे कहा। मुझे याद है, मैं कई घंटों तक सोया और डॉ. ब्रह्मप्रकाश नें मुझे धीरे से उठाया। वे मेरे बॉस थे, लेकिन उस समय वे मेरे लिए सिर्फ आदरणीय व्यक्ति थे, जो मेरी चिंता करते थे। वे मुझे उठाते थे भोजनालय में जाकर भोजन करने में सहयोग देते थे। हम साथ-साथ खाना खाते थे और लॉञ्चिंग करने के बारे में पूरे समय वे मुझे तसल्ली देते रहते थे। उस समय सिर्फ हम दो व्यक्ति थे और थकान से परे हमें विश्वास था कि हमारी रचना खराब नहीं होगी। हम जानते थे कि हमें अधिक पहाड़ों पर चढ़ना होगा और आनेवाले दिनों में चोटी को जीतना होगा, लेकिन ठीक उसी समय वे मुझे अपने पंखों की आड़ में ले लेते थे, जैसे कोई अभिभावक उस बच्चे के साथ करते हैं, जो अपनी दौड़ में रह जाने के बाद कुछ खो देता है-उसे खाना देते हैं, आराम देते हैं और उसके अगले कदम के बारे में सोचने का अवसर देते हैं।

शायद यह बहुत ही महत्वपूर्ण सीख है, जो मैंने एस.एल.वी–3 से सीखी कि मानवता, उदारता और समझदारी के गुण कभी भी गिरने नहीं देते हैं। दिन के अंत में, जब लक्ष्य निर्धारित हो गया तब राह टेढ़ी–मेढ़ी और बाधा सिर पर थी। यह सिर्फ मानवता का मूल्य है कि सच्ची सहायता निश्चित प्राप्त होगी। समय आने पर योग्यता, स्नेह, क्षमा, दया सबकी आवश्यकता पड़ती है, चाहे हमें स्कूल में पढ़ाना हो या मिसाइल का विकास करना हो या उच्च पद को सँभालना हो। अभिभावकों को अपने बच्चों को हमारे इस उलझे हुए संसार से बाहर लाना होगा। यहाँ से मेरी यात्रा विज्ञान के संसार में आगे चली जाती है—इसरो से मैं डी.आर.डी.ओ. की ओर मुड़ा, जहाँ मैं एक समूह का हिस्सा था, जो भारत के पहले स्वदेशी मिसाइल सिस्टम–पृथ्वी, त्रिशूल, नाग और अग्नि बना रहा था। वे कैसे बनते थे और किस तरीके से वे हमें इस कार्य पर ले जाते थे, इसका इतिहास पहले भी लिखा जा चुका है। जब हम कार्य कर रहे थे, मैं न सिर्फ रॉकेटरी और विज्ञान के क्षेत्र के बारे में नए ज्ञान को समझाता व तुलना करता था, बल्कि मैं परिवर्तन करना, प्रभावी तरह से निर्देश देना, संप्रेषण का अनुभव करता था। इसके साथ ही रूकावट और सफलता दोनों के अनुभव का भी आनंद उठाता था।

मुझे ये कहानियाँ बताने की आवश्यकता क्यों है? शायद मैं यह महसूस करता हूँ कि विषय के विविध स्तर पर जिन लोगों के साथ मैं संबंध रखता हूँ, मैं जीवन के हर पहलू का हमेशा सामना करता था, जो विस्मयकारी था। मैं उनके द्वारा कार्य करता था। मेरा ऐसा मानना है कि मैं जीवन की लहर में एक समान परिस्थिति को समझने में सबकी मदद कर सकता हूँ। तब मैं यह विश्वास करूँगा कि मेरी यह यात्रा सिर्फ मेरे जीवन के लिए ही नहीं, बल्कि अन्य सभी अनगिनत लोगों के लिए भी है–

इस धरती पर
मैं
विशाल कुआँ,
मेरी जगत पर
खड़े होकर
न जाने कितने
बाल गोपाल
शांत जल सी
दिव्यता
मुझमें से
खींचते हैं,
विश्व के
कण–कण
को
अनंत
करुणा से
सींचते हैं।

['मेरी जीवन यात्रा' पुस्तक से संग्रहित। अनुवादक – महेन्द्र यादव]

दासी

जयशंकर प्रसाद

लेखक परिचय :

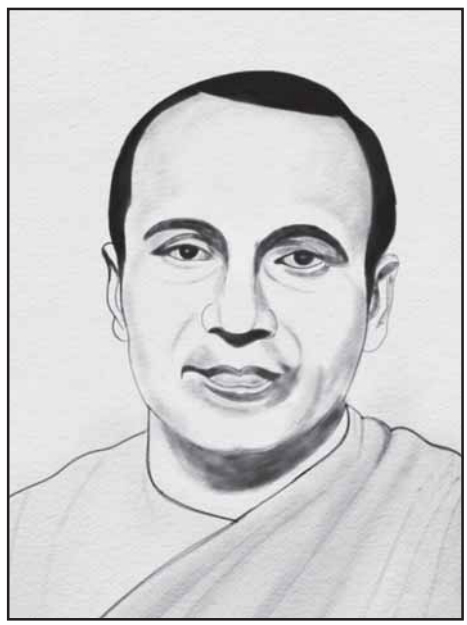

छायावाद के आधार स्तंभों में से एक जयशंकर प्रसाद का जन्म 30 जनवरी 1890 को काशी में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री देवी प्रसाद था। उनकी कविताएँ , नाटक, उपन्यास और कहानी इन सभी क्षेत्रों में प्रसिद्ध कृतियां रही हैं। घर से ही प्रसाद जी ने हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा के विद्वानों से साहित्य के साथ-साथ काव्य रचना की प्रारम्भिक शिक्षा को प्राप्त किया। जयशंकर प्रसाद जी ने मात्र 9 वर्ष की बाल्यावस्था से ही साहित्य, काव्य, नाटक आदि के लेखन की शुरुआत की थी। जयशंकर प्रसाद जी की प्रमुख रचनाएं कुछ इस प्रकार से है-

ÎFF©=+ 0 – *सज्जन, कल्याणी-परिणय, विशाख, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, प्रायश्चित्त, स्कन्दगुप्त, अजात-शत्रु, एक-घूँट, ध्रुवस्वामिनी।*

=+FæÜF 0 – *करूणालय (1913), कानन-कुसुम (1913), महाराणा का महत्व (1914), झरना(1918), चित्राधार (1918), प्रेम-पथिक, आँसू (1925), लहर 1935), कामायनी (1936) और प्रसाद-संगीत।*

HÑFÎÜFFÕF 0 – *कंकाल, इरावती (अपूर्ण उपन्यास), तितली*

=+ùFÎFU 0 – *प्रतिध्वनि, आँधी और इन्द्रजाल, छाया, आकाशदीप।*

निबंध: – काव्य और कला।

जयशंकर प्रसाद जी का देहान्त 15 नवम्बर, सन 1937 ई. में हो गया। प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है।

दासी

यह खेल किसको दिखा रहे हो बलराज ?— कहते हुए फिरोजा ने युवक की कलाई पकड़ ली। युवक की मुठ्ठी में एक भयानक छुरा चमक रहा था। उसने झुँझलाकर फिरोजा की तरफ देखा। वह खिलाखिलाकर हँस पड़ी। फिरोजा युवती से अधिक बालिका थी। अल्हड़पन, चंचलता और हँसी से बनी हुई वह तुर्क बाला सब हृदयों के स्नेह के समीप थी। नीली नसों से जकड़ी हुई बलराज की पुष्ट कलाई उन कोमल उँगलियों के बीच में शिथिल हो गई। उसने कहा—फिरोजा, तुम मेरे सुख में बाधा दे रही हो!

–सुख जीने में है बलराज! ऐसी हरी-भरी दुनिया, फूल-बेलों से सजे हुए नदियों के सुंदर किनारे, सुनहला सवेरा, चाँदी की रातें इन सबों से मुँह मोड़कर आँखें बंद कर लेना! कभी नहीं! सबसे बढ़कर तो इसमें हमलोगों की उछल-कूद का तमाशा है। मैं तुम्हें मरने न दूँगी।

–क्यों ?

–यों ही बेकार मर जाना! वाह, ऐसा नहीं हो सकता। जिहून के किनारे तुर्कों से लड़ते हुए मर जाना दूसरी बात थी। तब मैं तुम्हारी कब्र बनवाती, उस पर फूल चढ़ाती; पर इस गजनी नदी के किनारे अपना छुरा अपने कलेजे में भोंककर मर जाना बचपना भी तो नहीं है।

बलराज ने देखा, सुल्तान मसऊद के शिल्पकला-प्रेम की गम्भीर प्रतिमा, गजनी नदी पर एक कमानी वाला पुल अपनी उदास छाया जलधारा पर डाल रहा है। उसने कहा— वही तो, न जाने क्यों मैं उसी दिन नहीं मरा, जिस दिन मेरे इतने वीर साथी कटार से लिपटकर इसी गजनी की गोद में सोने चले गए। फिरोजा! उन वीर आत्माओं का वह शोचनीय अंत! तुम उस अपमान को नहीं समझ सकती हो।

– सुल्तान ने सिल्जूको से हारे हुए तुर्क और हिंदू दोनों को ही नौकरी से अलग कर दिया। पर तुर्कों ने तो मरने की बात नहीं सोची ?

–कुछ भी हो, तुर्क सुल्तान के अपने लोगों में हैं और हिंदू बेगाने ही हैं। फिरोजा! यह अपमान मरने से बढ़कर है।

और आज किसलिए मरने जा रहे थे ?

–वह सुनकर क्या करोगी ?– कहकर बलराजछुरा फेंककर एक लंबी साँस लेकर चुप हो रहा। फिरोजा ने उसका कंधा पकड़कर हिलाते हुए कहा–

सुनूँगी क्यों नहीं। अपनी... हाँ, उसी के लिए! कौन है वह! कैसी है ? बलराज! गोरी-सी है, मेरी ही तरह वह भी दुबली-पतली है न ? कानों में कुछ पहनती है ? और गले में ?

–कुछ नहीं फिरोजा, मेरी ही तरह वह भी कंगाल है। मैंने उससे कहा था कि लड़ाई पर जाऊँगा और सुल्तान की लूट में मुझे भी चाँदी-सोने की ढेरी मिलेगी, जब अमीर हो जाऊँगा, तब आकर तुमसे ब्याह करूँगा।

–तब भी मरने जा रहे थे! खाली हाथ ही लौटकर उससे भेंट करने की, उसे एक बार देख लेने की, तुम्हारी इच्छा न हुई! तुम बड़े पाजी हो। जाओ, मरो या जियो, मैं तुमसे न बोलूँगी।

सचमुच फिरोजा ने मुँह फेर लिया। वह जैसे रूठ गई थी। बलराज को उसके भोलेपन पर हँसी न आ सकी। वह सोचने लगा, फिरोजा के हृदय में कितना स्नेह! कितना उल्लास है? उसने पूछा–फिरोजा, तुम भी तो लड़ाई में पकड़ी हुई गुलामी भुगत रही हो। क्या तुमने कभी अपने जीवन पर विचार किया है? किस बात का उल्लास है तुम्हें?

–मैं अब गुलामी में नहीं रह सकूँगी। अहमद जब हिंदुस्तान जाने लगा था, तभी उसने राजासाहब से कहा था कि मैं एक हजार सोने के सिक्के भेजूँगा। भाई तिलक! तुम उसे लेकर फिरोजा को छोड़ देना और वह हिंदुस्तान आना चाहे तो उसे भेज देना। अब वह थैली आती ही होगी। मै छुटकारा पा जाऊँगी और गुलाम ही रहने पर रोने की कौन–सी बात है? मर जाने की इतनी जल्दी क्यों? तुम देख नहीं रहे हो कि तुर्कों में एक नई लहर आई है। दुनिया ने उनके लिए जैसे छाती खोल दी है। जो आज गुलाम है; वही कल सुल्तान हो सकता है। फिर रोना किस बात का, जितनी देर हँस सकती हूँ, उस समय को रोने में क्यों बिताऊँ?

–तुम्हारा सुखमय जीवन और भी लंबा हो, फिरोजा; किंतु आज तुमने जो मुझे मरने से रोक दिया, यह अच्छा नहीं किया।

कहता तो हूँ, बेकार न मरो। क्या तुम्हारे मरने के लिए कोई ..... ?

–कुछ भी नहीं, फिरोजा! हमारी धार्मिक भावनाएँ बँटी हुई है, सामाजिक जीवन दंभ से और राजनीतिक क्षेत्र कलह और स्वार्थ से जकड़ा हुआ है। शक्तियाँ हैं, पर उनका कोई केंद्र नहीं। किस पर अभिमान हो, किसके लिए प्राण दूँ?

–दुत, चले जाओ हिंदुस्तान में, मरने के लिए कुछ खोजो। मिल ही जाएगा, जाओ न ..... कहीं वह तुम्हारी ..... मिल जाय तो किसी झोंपड़ी ही में काट लेना। न सही अमीरी, किसी तरह तो कटेगी। जितने दिन जीने के हों, उन पर भरोसा रखना।

– बलराज! न जाने क्यों मैं तुम्हें मरने देना नहीं चाहती। वह तुम्हारी राह देखती हुई कहीं जी रही हो, तब! आह! कभी उसे देख पाती तो इसका मुँह ही चूम लेती। कितना प्यार होगा उसके छोटे–से हृदय में? लो, ये पाँच दिरम, मुझे कल राजा साहब ने इनाम के दिए हैं। इन्हे लेते जाओ! देखो, उससे जाकर भेंट करना।

फिरोजा की आँखों में आँसू भरे थे, तब भी वह जैसे हँस रही थी। सहसा वह पाँच धातु के टुकड़ों को बलराज के हाथ पर रखकर झाड़ियों में घुस गई। बलराज चुपचाप अपने हाथ पर के उन चमकीले टुकड़ों को देख रहा था। हाथ कुछ झुक रहा था। धीरे–धीरे टुकड़े उसके हाथ से खिसक पड़े। वह बैंठ गया– सामने एक पुरुष खड़ा मुस्करा रहा था।

–बलराज!

–राजा साहब। –जैसे आँख खोलते हुए बलराज ने कहा, और उठकर खड़ा हो गया।

–मैं सब सुन रहा था। तुम हिंदुस्तान चले जाओ। मैं भी तुमको यही सलाह दूँगा। किंतु, एक बात है।

–वह क्या राजा साहब ?

–मैं तुम्हारे दु:ख का अनुभव कर रहा हूँ। जो बातें तुमनें अभी फिरोजा से कही है, उन्हें सुनकर मेरा हृदय विचलित हो उठा है। किंतु क्या करूँ ? आकांक्षा का नशा पी लिया है। वही मुझे बेबस किए है। जिस दु:ख से मनुष्य छाती फाड़कर चिल्लाने लगता हो, सिर पीटने लगता हो, वैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मैं केवल सिर नीचा कर चुप रहना अच्छा समझता हूँ। क्या ही अच्छा होता कि जिस सुख में आनन्दातिरेक से मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, उसे भी मुस्कराकर टाल दिया करूँ। सो नहीं होता। एक साधारण स्थिति से मैं सुल्तान के सलाहकारों के पद तक तो पहुँच गया हूँ। मैं भी हिंदुस्तान का ही एक कंगाल था। प्रतिदिन की मर्यादा–वृद्धि, राजकीय विश्वास और उसमें सुख की अनुभूति ने मेरे जीवन को पहेली बनाकर..... जाने दो। मैने सुल्तान के दरबार से जितना सीखा है, वही मेरे लिए बहुत है। एक बनावटी गंभीरता ! छल–पूर्ण विनय ! ओह, कितना भीषण है, वह विचार ! मैं धीरे–धीरे इतना बन गया हूँ कि मेरी सहृदयता घूँघट पलटने नहीं पाती। लोगों को मेरी छाती में हृदय के होने का सन्देह हो चला है। फिर भी मैं तुमसे अपनी सहृदयता क्यों प्रकट करूँ ? तब भी आज तुमने मेरे स्वभाव की धारा का बाँध तोड़ दिया है। और मैं... ।

–बस राजा साहब, और कुछ न कहिए। मैं जाता हूँ। मैं समझ गया कि.... ।

–ठहरो, मुझे अधिक अवकाश नहीं है। कल यहाँ से कुछ विद्रोही गुलाम, अहमद नियाल्तगीन के पास लाहौर जाने वाले हैं, उन्हीं के साथ तुम चले जाओ। यह लो ! –कहते हुए सुल्तान के विश्वासी राजा तिलक ने बलराज के हाथों में थैली रख दी। बलराज वहाँ से चुपचाप चल पड़ा।

तिलक सुल्तान महमूद का अत्यंत विश्वासपात्र हिंदू कर्मचारी था। अपने बुद्धिबल से कट्टर यवनों के बीच अपनी प्रतिष्ठा दृढ़ रखने के कारण सुल्तान मसऊद के शासन–काल में भी वह उपेक्षा का पात्र नहीं था। फिर भी वह अपने को हिंदू ही समझता था, चाहे अन्य लोग उसे जो भी समझते रहे हों। बलराज की बातें वह सुन चुका था। आज उसकी मनोवृत्तियों में भयानक हलचल थी। सहसा उसने पुकारा–फिरोजा !

झाड़ियों से निकलकर फिरोजा ने उसके सामने सिर झुका दिया। तिलक ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए कोमल स्वर में पूछा–फिरोजा, तुम अहमद के पास हिन्दुस्तान जाना चाहती हो ?

फिरोजा के हृदय में कंपन होने लगा। वह कुछ न बोली। तिलक ने कहा— डरो मत, साफ–साफ कहो।

–क्या अहमद ने आपके पास दीनारें भेज दीं ? – कहकर फिरोजा ने अपनी उत्कण्ठा—भरी आँखें उठाईं। तिलक ने हँसकर कहा–सो तो उसने नहीं भेजीं, तब भी तुम जाना चाहती हो, तो मुझसे कहो।

मैं क्या कह सकती हूँ ? जैसी मेरी.... । –कहते–कहते उसकी आँखों में आँसू छलछला उठे। तिलक ने कहा—फिरोजा, तुम जा सकती हो। कुछ सोने के टुकड़ों के लिए मैं तुम्हारा हृदय नहीं कुचलना चाहता।

–सच ! आश्चर्य–भरी कृतज्ञता उसकी वाणी में थी।

–सच फिरोजा। अहमद मेरा मित्र है, और भी एक काम के लिए तुमको भेज रहा हूँ। उसे जाकर समझाओ कि वह अपनी सेना लेकर पंजाब के बाहर इधर–उधर हिंदुस्तान में लूट–मार न किया करे। मैं कुछ ही दिनों में सुल्तान से कहकर खजाने और मालगुजारी का अधिकार भी उसी को दिला दूँगा। थोड़ा समझकर धीरे–धीरे काम करने से सब हो जायेगा। समझी न, दरबार में इस पर गर्मागर्मी है कि अहमद की नीयत खराब है। कहीं ऐसा न हो कि मुझी को सुल्तान इस काम के लिए भेजें।

–फिरोजा, मैं हिंदुस्तान नहीं जाना चाहता। मेरी एक छोटी बहन थी, वह वहाँ है? क्या दु:ख उसने पाया? मरी या जीती है, इन कई बरसों से मैंने इसे जानने की चेष्टा भी नहीं की। और भी.... मैं हिंदू हूँ, फिरोजा! आज तक अपनी आकांक्षा में भूला हुआ, अपने आराम में मस्त, अपनी उन्नति में विस्मृत, गजनी में बैठा हुआ हिंदुस्तान को, अपनी जन्मभूमि को और उसके दु:ख–दर्द को भूल गया हूँ। सुल्तान महमूद के लूटों की गिनती करना, उस रक्त–रंजित धन की तालिका बनाना, हिंदुस्तान के ही शोषण के लिए सुल्तान को नई–नई तरकीबें बताना, यही तो मेरा काम था, जिससे आज मेरी इतनी प्रतिष्ठा है। दूर रहकर मैं वहाँ कुछ कर सकता था; पर हिंदुस्तान कहीं मुझे जाना पड़ा–उसकी गोद में फिर रहना पड़ा– तो मैं क्या करूँगा! फिरोजा, मैं वहाँ जाकर पागल हो जाऊँगा। चिरनिर्वासित, विस्मृत अपराधी! इरावती मेरी बहन! आह, मै उसे क्या मुँह दिखलाऊँगा। वह कितने कष्टों में जीती होगी! और मर गई हो तो .... फिरोजा! अहमद से कहना, मेरी मित्रता के नाते मुझे इस दु:ख से बचा ले।

–मैं जाऊँगी और इरावती को खोज निकालूँगी–राजा साहब! आपके हृदय में इतनी टीस है, आज तक मैं न जानती थी। मुझे यही मालूम था कि अनेक अन्य तुर्क सरदारों के समान आप भी रंगरलियों में समय बिता रहे हैं, किंतु बरफ से ढकी हुई चोटियों के नीचे भी ज्वालामुखी होता है।

–तो जाओ फिरोजा! मुझे बचाने के लिए, उस भयानक आग से, जिससे मेरा हृदय जल उठता है, मेरी रक्षा करो! –कहते हुए राजा तिलक उसी जगह बैठ गए। फिरोजा खड़ी थी। धीरे–धीरे राजा के मुख पर एक स्निग्धता आ चली। अब अन्धकार हो चला। गजनी के लहरों पर से शीतल पवन उन झाड़ियों में भरने लगा था। सामने ही राजा साहब का महल था। उसका शुभ्र गुम्वद उस अन्धकार में अभी अपनी उज्जवलता से सिर ऊँचा किये था। तिलक ने कहा– फिरोजा, जाने के पहले अपना वह गाना सुनाती जाओ।

फिरोजा गाने लगी। उसके गीत की ध्वनि थी—मैं जलती हुई दीप–शिखा हूँ और तुम हृदय–रंजन प्रभात हो! जब तक देखती नहीं, जला करती हूँ और जब तुम्हें देख लेती हूँ, तभी मेरे अस्तित्व का अन्त हो जाता है— मेरे प्रियतम!– सन्ध्या की अँधेरी झाड़ियों में गीत की गुंजार घूमने लगी।

यदि एक बार उसे फिर देख पाता; पर यह होने का नहीं। निष्ठुर नियति! उसकी पवित्रता पंकिल हो गई होगी। उसकी उज्जवलता पर संसार के काले हाथों ने अपनी छाप लगा दी होगी। तब उससे भेंट करके क्या करूँगा? क्या करूँगा अपने कल्पना के स्वर्ण–मंदिर का खंडहर देखकर!– कहते–कहते बलराज ने अपने बलिष्ठ पंजों को पत्थरों से जकड़े हुए मंदिर के प्राचीर पर दे मारा। वह शब्द एक क्षण में विलीन हो गया। युवक ने आरक्त आँखों से उस विशाल मन्दिर को देखा और वह पागल सा उठ खड़ा हुआ। परिक्रमा के ऊँचे–ऊँचे खंभों से धक्के खाता हुआ घूमने लगा।

गर्भ-गृह के द्वारपालों पर उसकी दृष्टि पड़ी। वे तेल से चुपड़े हुए काले-काले दूत अपने भीषण त्रिशूल से जैसे युवक की ओर संकेत कर रहे थे। वह ठिठक गया। सामने देवगृह के समीप घृत का अखण्ड-दीप जल रहा था। केशर, कस्तूरी और अगरु से मिश्रित फूलों की दिव्य सुगन्ध की झकोर रह-रहकर भीतर से आ रही थी। विद्रोही हृदय प्रणत होना नहीं चाहता था, परंतु सिर सम्मान से झुक ही गया।

-देव! मैंने अपने जीवन में जान-बूझकर कोई पाप नहीं किया है। मैं किसके लिए क्षमा माँगूँ? गजनी के सुल्तान की नौकरी, वह मेरे वश की नहीं; किंतु मैं माँगता हूँ..... एक बार उस, अपनी प्रेम-प्रतिमा का दर्शन! कृपा करो। मुझे बचा लो।

प्रार्थना करके युवक ने सिर उठाया ही था कि उसे किसी को अपने पास से खिसकने का संदेह हुआ। वह घूमकर देखने लगा। एक स्त्री कौशेय वसन पहने हाथ में फूलों से सजी डाली लिए चली जा रही थीं। युवक पीछे-पीछे चला। परिक्रमा में एक स्थान पर पहुँच कर उसने संदिग्ध स्वर से पुकारा—इरावती! वह स्त्री घूमकर खड़ी हो गई। बलराज अपने दोनों हाथ पसार कर उसे आलिंगन करने के लिए दौड़ा। इरावती ने कहा—ठहरो। बलराज ठिठककर उसकी गंभीर मुखाकृति को देखने लगा। उसने पूछा—क्यों इरा! क्या तुम मेरी वाग्दत्ता पत्नी नहीं हो? क्या हम लोगों का वह्नि—वेदी के सामने परिणय नहीं होने वाला था? क्या.... ?

-हाँ, होने वाला था किंतु हुआ नहीं, और बलराज! तुम मेरी रक्षा नहीं कर सके। मैं आततायी के हाथ से कलंकित की गई। फिर तुम मुझे पत्नी-रूप में कैसे ग्रहण करोगे? तुम वीर हो! पुरुष हो! तुम्हारे पुरुषार्थ के लिए बहुत-सी महत्वाकांक्षाएँ हैं। उन्हें खोज लो, मुझे भगवान् की शरण में छोड़ दो। मेरा जीवन, अनुताप की ज्वाला से झुलसा हुआ मेरा मन, अब स्नेह के योग्य नहीं।

- प्रेम की, पवित्रता की, परिभाषा अलग है इरा! मैं तुमको प्यार करता हूँ। तुम्हारी पवित्रता से मेरे मन का अधिक संबंध नहीं भी हो सकता है। चलो, हम.... और कुछ भी हो; मेरे प्रेम की वह्नि तुम्हारी पवित्रता को अधिक उज्जवल कर देगी।

-भाग चलूँ, क्यों? सो नहीं हो सकता। मैं क्रीत दासी हूँ। म्लेच्छों ने मुझे मुलतान की लूट में पकड़ लिया। मैं उनकी कठोरता में जीवित रहकर बराबर उनका विरोध ही करती रहीं। नित्य कोड़े लगते। बाँधकर मैं लटकाई जाती। फिर भी मैं अपने हठ से न डिगी। एक दिन कन्नौज के चतुष्पथ पर घोड़ों के साथ ही बेचने के लिए उन आततायियों ने मुझे भी खड़ा किया। मैं बिकी पाँच सौ दिरम पर, काशी के ही एक महाजन ने मुझे दासी बना लिया। बलराज! तुमने न सुना होगा, कि मैं किन नियमों के साथ बिकी हूँ। मैने लिखकर स्वीकार किया है, इस घर का कुत्सित से कुत्सित कर्म करूँगी और कभी विद्रोह न करूँगी- न कभी भागने की चेष्टा करूँगी; न किसी के कहने से अपने स्वामी का अहित सोचूँगी। यदि मैं आत्महत्या भी कर डालूँ, तो मेरे स्वामी या उनके कुटुंब पर कोई दोष न लगा सकेगा! वे गंगा स्नान किये-से पवित्र हैं। मेरे सम्बन्ध में वे सदा ही शुद्ध और निष्पाप हैं। मेरे शरीर पर उनका आजीवन अधिकार रहेगा। वे मेरे नियम-विरुद्ध

आचरण पर जब चाहें राजपथ पर मेरे बालों को पकड़कर मुझे घसीट सकते हैं। मुझे दण्ड दे सकते हैं। मैं तो मर चुकी हूँ। मेरा शरीर पाँच सौ दिरम पर जीकर जब तक सहेगा, खटेगा। वे चाहें तो मुझे कौड़ी के मोल भी किसी दूसरे के हाथ बेच सकते हैं। समझे! सिर पर तृण रखकर मैंने स्वयं अपने को बेचने में स्वीकृति दी है। उस सत्य को कैसे तोड़ दूँ?

बलराज ने लाल होकर कहा- इरावती, यह असत्य है, सत्य नहीं। पशुओं के समान मनुष्य भी बिक सकते है? मैं यह सोच भी नहीं सकता। यह पाखण्ड तुर्की घोड़ों के व्यापारियों ने फैलाया है। तुमने अनजान में जो प्रतिज्ञा कर ली है, वह ऐसा सत्य नहीं कि पालन किया जाए। तुम नहीं जानती हो कि तुमको खोजने के लिए ही मैने यवनों की सेवा की।

-क्षमा करो बलराज, मैं तुम्हारा तर्क नहीं समझ सकी। मेरी स्वामिनी का रथ दूर चला गया होगा, तो मुझे बातें सुननी पड़ेंगी क्योंकि आजकल मेरे स्वामी नगर से दूर स्वास्थ्य के लिए उपवन में रहते हैं। स्वामिनी देव-दर्शन के लिए आई थीं।

-तब मेरा इतना परिश्रम व्यर्थ हुआ! फिरोजा ने व्यर्थ ही आशा दी थी। मैं इतने दिनों भटकता फिरा। इरावती! मुझ पर दया करो।

-फिरोजा कौन? -फिर सहसा रुककर इरावती ने कहा- क्या करूँ! यदि मैं वैसा करती, तो मुझे जीवन की सबसे बड़ी प्रसन्नता मिलती; किंतु वह मेरे भाग्य में है कि नहीं, इसे भगवान् ही जानते होंगे? मुझे अब जाने दो। -बलराज इस उत्तर से खिन्न और चकराया हुआ काठ के किवाड़ की तरह इरावती के सामने से अलग होकर मंदिर के प्राचीर से लग गया। इरावती चली गई। बलराज कुछ समय तक स्तब्ध और शून्य-सा वहीं खड़ा रहा। फिर सहसा जिस ओर इरावती गई थी, उसी ओर चल पड़ा।

युवक बलराज कई दिन तक पागलों-सा धनदत्त के उपवन से नगर तक चक्कर लगाता रहा। भूख-प्यास भूलकर वह इरावती को एक बार फिर देखने के लिए विकल था; किंतु वह सफल न हो सका। आज उसने निश्चय किया था कि वह काशी छोड़कर चला जाएगा। वह जीवन से हताश होकर काशी से प्रतिष्ठान जाने वाले पथ पर चलने लगा। उसकी पहाड़ के ढोके-सी काया, जिसमें असुर-सा बल होने का अनुमान करते, निर्जीव-सी हो रही थी। अनाहार से उसका मुख विवर्ण था। वह सोच रहा था- उस दिन विश्वनाथ के मंदिर में न जाकर मैंने आत्महत्या क्यों न कर ली! वह अपनी उधेड़-बुन में चल रहा था। न जाने कब तक चलता रहा। वह चौंक उठा— जब किसी के डाँटने का शब्द सुनाई पड़ा—देखकर नहीं चलता। बलराज ने चौंककर देखा, अश्वारोहियों की लंबी पंक्ति, जिसमें अधिकतर अपने घोड़ों को पकड़े हुए पैदल ही चल रहे थे। वे सब तुर्क थे। घोड़ों के व्यापारी-से जान पड़ते थे। गजनी के प्रसिद्ध महमूद के आक्रमणों का अन्त हो चुका था। मसऊद सिंहासन पर था। पंजाब तो गजनी के सेनापति नियाल्तगीन के शासन में था। मध्यप्रदेश में भी तुर्क व्यापारी अधिकतर व्यापारिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। वह राह छोड़कर हट गया। अश्वारोही ने पूछा- बनारस कितनी दूर होगा?

बलराज ने कहा-मुझे नहीं मालूम।

–तुम अभी उधर से चले आ रहे हो ओर कहते हो, नहीं मालूम। ठीक–ठीक बताओ, नहीं तो .....।

– नहीं तो क्या ? मैं तुम्हारा नौकर हूँ।– कहकर वह आगे बढ़ने लगा। अकस्मात् पहले अश्वारोही ने कहा— पकड़ लो इसको !

— कौन ! नियाल्तगीन ! — सहसा बलराज चिल्ला उठा।

–अच्छा, यह तुम्हीं हो बलराज ! यह तुम्हारा क्या हाल है, क्या सुल्तान की सरकार में अब तुम काम नहीं करते हो ?

–नहीं, सुल्तान मसऊद का मुझ पर विश्वास नहीं है। मैं ऐसा काम नहीं करता, जिसमें संदेह मेरी परीक्षा लेता रहे; किंतु इधर तुम लोग क्यों ?

–सुना है, बनारस एक सुंदर और धनी नगर है। और .....।

– और क्या ?

– कुछ नहीं, देखने चला आया हूँ। काजी नहीं चाहता कि कन्नौज के पूरब भी कुछ हाथ–पाँव बढ़ाया जाये। तुम चलो न मेरे साथ। मैं तुम्हारी तलवार की कीमत जानता हूँ। बहादुर लोग इस तरह नहीं रह सकते। तुम अभी तक हिन्दू बने हो। पुरानी लकीर पीटने वाले, जगह–जगह झुकने वाले, सबसे दबते हुए, बनते हुए, कतराकर चलने वाले हिन्दू। क्यों ? तुम्हारे पास बहुत–सा कूड़ा–कचड़ा इकट्ठा हो गया है, उनका पुरानेपन का लोभ तुमको फेंकने नहीं देता ? मन में नयापन तथा दुनिया का उल्लास नहीं आने पाता ? इतने दिन हम लोग साथ रहे, फिर भी....।

बलराज सोच रहा था, इरावती का वह सूखा व्यवहार। सीधा–सीधा उत्तर ! क्रोध से वह अपना ओठ चबाने लगा। नियाल्तगीन बलराज को परख रहा था ! उसने कहा— तुम कहाँ हो ? बात क्या है ? ऐसा बुझा मन क्यों ?

बलराज ने प्रकृतिस्थ होकर कहा— कहीं तो नहीं। अब मुझे छुट्टी दो, मैं जाऊँ। तुम्हारा बनारस देखने का मन है—इस पर तो मुझे विश्वास नहीं होता, तो भी मुझे इससे क्या ? जो चाहो करो। संसार–भर में किसी पर दया करने की आावश्यकता नहीं—लूटो, काटो, मारो। जाओ, नियाल्तगीन।

नियाल्तगीन ने हँसकर कहा—पागल तो नहीं हो। इन थोड़े–से आदमियों से भला क्या हो सकता है। मैं तो एक बहाने से इधर आया हूँ। फिरोजा का बनारसी जरी के कपड़ों का ....।

क्या फिरोजा भी तुम्हारे साथ है ?

–चलो, पड़ाव पर सब आप ही मलूम हो जायेगा !– कहकर नियाल्तगीन ने संकेत किया। बलराज के मन में न जाने कैसी प्रसन्नता उमड़ी। वह एक तुर्की घोड़े पर सवार हो गया।

दोनों ओर जवाहरात, जरी–कपड़ों, बर्तन तथा सुगंधित द्रव्यों की सजी हुई दुकानों से, देश–विदेश के व्यापारियों की भीड़ और बीच–बीच में एक घोड़े के रथों से, बनारस की पत्थर से बनी हुई चौड़ी गलियाँ अपने ढंग की निराली दिखती थीं। प्राचीरों से घिरा हुआ नगर का प्रधान भाग त्रिलोचन से लेकर राजघाट

तक विस्तृत था। तोरणों पर गांगेय देव के सैनिकों का जमाव था। कन्नौज के प्रतिहार सम्राट् से काशी छीन ली गई थी। त्रिपुरी उस पर शासन करती थी। ध्यान से देखने पर यह तो प्रकट हो जाता था कि नागरिकों में अव्यवस्था थी। फिर भी ऊपरी काम-काज, क्रय-विक्रय, यात्रियों का आवागमन चल रहा था।

फिरोजा कमख्वाब देख रही थी और नियाल्तगीन मणि-मुक्ताओं की ढेरी से अपने लिए अच्छे-अच्छे नग चुन रहा था। पास ही दोनों दुकानें थीं. बलराज बीच में ही खड़ा था। अन्यमनस्क फिरोजा ने कई थान छाँट लिये थे। उसने कहा—बलराज! देखो तो, इन्हें तुम कैसा समझते हो, हैं न अच्छे? उधर से नियाल्तगीन ने पूछा— कपड़े देख चुकी हो, तो इधर आओ। इन्हें भी देख लो! फिरोजा उधर जाने लगी थी कि दुकानदार ने कहा-लेना न देना, झूठ-मूठ तंग करना। कभी देखा तो नहीं। कंगालों की तरह जैसे आँखों से देखकर ही खा जायेगी। फिरोजा घूमकर खड़ी हो गई। उसने पूछा—क्या बकते हो?—जा-जा तुर्किस्तान के जंगलों में भेड़ चढ़ा। इन कपड़ों का लेना तेरा काम नहीं। —सटी हुई दुकानों से जौहरी अभी कुछ बोलता ही चाहता था कि बलराज ने कहा-

-चुप रह, नहीं तो जीभ खींच लूँगा।

-ओहो! तुर्की गुलाम का दास, तू भी .....। अभी इतना ही कपड़े वाले के मुँह से निकला था कि नियाल्तगीन की तलवार उसके गले तक पहुँच गई। बाजार में हलचल मची। नियाल्तगीन के साथी इधर-उधर बिखरे ही थे। कुछ तो वहीं आ गए। औरों को समाचार मिल गया। झगड़ा बढ़ने लगा। नियाल्तगीन को कुछ लोगों ने घेर लिया था; किंतु तुर्को ने उसे छीन लेना चाहा। राजकीय सैनिक पहुँच गए। नियाल्तगीन को यह मालूम हो गया कि पड़ाव पर समाचार पहुँच गया है। उसने निर्भीकता से अपनी तलवार घुमाते हुए कहा—अच्छा होता कि झगड़ा यहीं तक रहता, नहीं तो हम लोग तुर्क हैं।

तुर्कों का आतंक उत्तरी भारत में फैल चुका था। क्षण-भर के लिए सन्नाटा तो हुआ, परंतु वणिक के प्रतिरोध के लिए नागरिकों का रोष उबल रहा था। राजकीय सैनिकों का सहयोग मिलते ही युद्ध आरंभ हो गया, अब और भी तुर्क आ पहुँचे थे। नियाल्तगीन हँसने लगा। उसने तुर्की में संकेत किया। बनारस का राजपथ तुर्कों की तलवार से पहली बार आलोकित हो उठा।

नियाल्तगीन के साथी संगठित हो गए थे। वे केवल युद्ध और आत्मरक्षा ही नहीं कर रहे थे, बहुमूल्य पदार्थों की लूट भी करने लगे। बलराज स्तब्ध था। वह जैसे एक स्वप्न देख रहा था। अकस्मात् उसके कानों में एक परिचित स्वर सुनाई पड़ा। उसने घूमकर देखा—जौहरी के गले पर तलवार पड़ा ही चाहती थी और इरावती 'इन्हें छोड़ दो, न मारो' कहती हुई तलवार के सामने आ गई थी। बलराज ने कहा—ठहरो, नियाल्तगीन। दूसरे ही क्षण नियाल्तगीन की कलाई बलराज की मुट्ठी में थी। नियाल्तगीन ने कहा—धोखेबाज काफिर यह क्या?—कई तुर्क पास आ गए थे! फिरोजा का भी मुख तमतमा गया था। बलराज ने सबल होने पर भी बड़ी दीनता से कहा-फिरोजा, यही इरावती है। फिरोजा हँसने लगी। इरावती को पकड़कर उसने कहा—नियाल्तगीन! बलराज को इसके साथ लेकर मैं चलती हूँ, तुम आना और इस जौहरी से तुम्हारा नुकसान न हो, तो न मारो! देखो, बहुत-से घुड़सवार आ रहे हैं। हम सबों का चलना ही अच्छा है।

नियाल्तगीन ने परिस्थिति एक क्षण में ही समझ ली। उसने जौहरी से पूछा—तुम्हारे घर में दूसरी ओर से बाहर जाया जा सकता है?

–हाँ! —कँपे कण्ठ से उत्तर मिला।

–अच्छा चलो, तुम्हारी जान बच रही है। मैं इरावती को ले जाता हूँ। — कहकर नियाल्तगीन ने एक तुर्क के कान में कुछ कहा और बलराज को आगे चलने का संकेत करके इरावती और फिरोजा के पीछे धनदत्त के घर में घुसा। इधर तुर्क एकत्र होकर प्रत्यावर्तन कर रहे थे। नगर की राजकीय सेना पास आ रही थी।

चंद्रभागा के तट पर शिविरों की एक श्रेणी। उसके समीप ही घने वृक्षों के झुरमुट में इरावती और फिरोजा बैठी हुई सायंकालीन गंभीरता की छाया में एक-दूसरे का मुँह देख रही हैं। फिरोजा ने कहा—

–बलराज को तुम प्यार करती हो?

–मैं नहीं जानती–एक आकस्मिक उत्तर मिला!

–और वह तो तुम्हारे ही लिए गजनी से हिंदुस्तान चला आया।

–तो क्यों आने दिया, वहीं रोक रखतीं।

–तुमको क्या हो गया है?

–मैं-मैं नहीं रही; मैं दासी हूँ; कुछ धातु के टुकड़ों पर बिकी हुई हाड़-मांस का समूह, जिसके भीतर एक सूखा हृदय-पिण्ड है।

–इरा! वह मर जायेगा- पागल हो जाएगा।

–और मैं क्या हो जाऊँ, फिरोजा?

- अच्छा होता, तुम भी मर जातीं! —तीखेपन से फिरोजा ने कहा।

इरावती चौंक उठी। उसने कहा—बलराज ने वह भी न होने दिया। उस दिन नियाल्तगीन की तलवार ने यही कर दिया होता; किंतु मनुष्य बड़ा ही स्वार्थी है। अपने सुख की आशा में वह कितनों को दुखी बनाया करता है। अपनी साध पूरी करने में दूसरों की आवश्यकता ठुकरा दी जाती है। तुम ठीक कह रही हो फिरोजा, मुझे ....

–ठहरो, इरा! तुमने मन को कड़वा बनाकर मेरी बात सुनी है। उतनी ही तेजी से उसे बाहर कर देना चाहती हो।

–मेरे दु:खी होने पर जो मेरे साथ रोने आता है, उसे मैं अपना मित्र नहीं जान सकती, फिरोजा। मैं तो देखूँगी कि वह मेरे दु:ख को कितना कम कर सका है। मुझे दु:ख सहने के लिए जो छोड़ जाता है, केवल अपने अभिमान और आकांक्षा की तुष्टि के लिए। मेरे दु:ख में हाथ बँटाने का जिसका साहस नहीं, जो मेरी स्थिति में साथी नहीं बन सकता, जो पहले अमीर बनना चाहता है फिर अपने प्रेम का दान करना चाहता है, वह मुझसे हृदय माँगे, इससे बढ़कर धृष्टता और क्या होगी?

–मैं तुम्हारी बहुत–सी बातें समझ नहीं सकी, लेकिन मैं इतना तो कहूँगी कि दु:खों ने तुम्हारे जीवन की कोमलता छीन ली है।

–फिरोजा.... मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहती। तुमने मेरे प्राण बचाये हैं सही, किन्तु हृदय नहीं बचा सकतीं। उसे अपनी खोज–खबर आप ही लेनी पड़ेगी। तुम चाहे जो मुझे कह लो। मैं तो समझती हूँ कि मनुष्य दूसरों की दृष्टि में कभी पूर्ण नहीं हो सकता! पर उसे अपनी आँखों से तो नहीं गिरना चाहिए।

फिरोजा ने संदेह से पीछे की ओर देखा। बलराज वृक्ष की आड़ से निकल आया। उसने कहा– फिरोजा, मैं जब गजनी के किनारे मरना चाहता था, तो क्या भूल कर रहा था? अच्छा, जाता हूँ।

इरावती सोच रही थी, अब भी कुछ बोलूँ–

फिरोजा सोच रही थी, दोनें को मरने से बचाकर क्या सचमुच मैंने कोई बुरा काम किया?

बलराज की ओर किसी ने न देखा। वह चला गया।

रावी के किनारे एक सुंदर महल में अहमद नियाल्तगीन पंजाब के सेनानी का आवास है। उस महल के चारों ओर वृक्षों की दूर तक फैली हुई हरियाली है, जिसमें शिविरों की श्रेणीं में तुर्क सैनिकों का निवास है।

बसन्त की चाँदनी रात अपनी मतवाली उज्ज्वलता में महल के मीनारों और गुम्बदों तथा वृक्षों की छाया में लड़खड़ा रही है, अब जैसे सोना चाहती हो। चन्द्रमा पश्चिम में धीरे–धीरे झुक रहा था। रावी की ओर एक संगमरमर की दालान में खाली सेज बिछी थी। जरी के परदे ऊपर की ओर बँधे थे। दालान की सीढ़ी पर बैठी हुई इरावती रावी का प्रवाह देखते–देखते सोने लगी थी—उस महल की जैसे सजावट गुलाबी पत्थर की अचल प्रतिमा हो।

शयन–कक्ष की सेवा का भार आज उसी पर था। वह अहमद के आगमन की प्रतीक्षा करते–करते सो गई थी। अहमद इन दिनों गजनी से मिले हुए समाचार के कारण अधिक व्यस्त था। सुल्तान के रोष का समाचार उसे मिल चुका था। वह फिरोजा से छिपाकर, अपने अंतरंग साथियों से, जिन पर उसे विश्वास था, निस्तब्ध रात्रि में मंत्रणा किया करता। पंजाब का स्वतंत्र शासक बनने की अभिलाषा उसके मन में जग गई थी, फिरोजा ने उसे मना किया था, किंतु एक साधारण तुर्क दासी के विचार राजकीय कामों में कितने मूल्य के हैं, इसे वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की दृष्टि से परखता था। फिरोजा कुछ तो रूठी और कुछ उसकी तबीयत भी अच्छी न थी। वह बंद कमरे में जाकर सो रही। अनेक दासियों के रहते भी आज इरावती को ही वहाँ ठहरने के लिए उसने कह दिया था। अहमद सीढ़ियों से चढ़कर दालान के पास आया। उसने देखा एक वेदना–विमण्डित सुप्त सौंदर्य! वह और भी समीप आया। गुम्बद के बगल से चन्द्रमा की किरणें ठीक इरावती के मुख पर पड़ रही थीं। अहमद ने वारुणीविलसित नेत्रों से देखा, उस रूपमाधुरी को, जिसमें स्वाभाविकता थी, बनावट थी, प्रमाद की गर्मी नहीं। एक बार सशंक दृष्टि से उसने चारों और देखा फिर इरावती खड़ी होकर अपने वस्त्र संभालने लगी। अहमद ने संकोच—भरी ढिटाई से कहा–

–तुम यहाँ क्यों सो रही हो, इरा?

–थक गई थी। कहिए, क्या लाऊँ?

–थोड़ी शीराजी—कहते हुए वह पलंग पर जाकर बैठ गया और इरावती का स्फटिक-पात्र में शीराजी उँड़ेलना देखने लगा। इरा ने जब पात्र भरकर अहमद को दिया, तो अहमद ने सतृष्ण नेत्रों से उसकी ओर देखकर पूछा— फिरोजा कहाँ है?

–सिर में दर्द है, भीतर सो रही है।

अहमद की आँखों में पशुता नाच उठी। शरीर में एक सनसनी का अनुभव करते हुए उसने इरावती का हाथ पकड़कर कहा— बैठो न, इरा! तुम थक गई हो।

–आप शर्बत लीजिए। मैं जाकर फिरोजा को जगा दूँ।

–फिरोजा! फिरोजा के हाथ बिक गया हूँ क्या, इरावती! तुम-आह!

इरावती हाथ छुड़ाकर हटने वाली ही थी कि सामने फिरोजा खड़ी थी! इसकी आँखों में तीव्र ज्वाला थी। उसने कहा—मै बिकी हूँ, अहमद तुम भला मेरे हाथ क्यों बिकने लगे? लेकिन तुमको मालूम है कि तुमने अभी राजतिलक को मेरा दाम नहीं चुकाया; इसलिए मैं जाती हूँ।

अहमद हत बुद्धि! निष्प्रभ! और फिरोजा चली। इरावती ने गिड़गिड़ाकर कहा—बहन, मुझे भी न लेती चलोगी..... ?

फिरोजा ने घूमकर एक बार स्थिर दृष्टि से इरावती की ओर देखा और कहा—तो फिर चलो।

दोनों हाथ पकड़े सीढ़ी से उतर गई।

बहुत दिनों तक विदेश में इधर-उधर भटकने पर बलराज जब से लौट आया है, तब से चंद्रभागा-तट के जाटों मे एक नई लहर आ गई है। बलराज ने अपने सजातीय लोगों को पराधीनता से मुक्त होने का संदेश सुनाकर उन्हें सुल्तान-सरकार का अबाध्य बना दिया है। उद्दंड जाटों को अपने वश में रखना, उन पर सदा फौजी शासन करना, सुल्तान के कर्मचारियों के लिए भी बड़ा कठिन हो रहा था।

इधर फिरोजा के जाते ही अहमद अपनी कोमल वृत्तियों को भी खो बैठा। एक ओर उसके पास मसऊद के रोष के समाचार आते थे, दूसरी ओर वह जाटों की हलचल से खजाना भी नहीं भेज सकता था। वह झुँझला गया। दिखावे में तो अहमद ने जाटों को एक बार ही नष्ट करने का निश्चय कर लिया, और अपनी दृढ़ सेना के साथ वह जाटों को घेरे में डालते हुए बढ़ने लगा; किंतु उसके हृदय में एक दूसरी ही बात थी। उसे मालूम हो गया था कि गजनी की सेना तिलक के साथ आ रही है; उसकी कल्पना का साम्राज्य छिन्न-भिन्न कर देने के लिए! उसने अंतिम प्रयत्न करने का निश्चय किया। अंतरंग साथियों की सम्मति हुई कि यदि विद्रोही जाटों को इस समय मिला लिया जाए, तो गजनी से पंजाब आज ही अलग हो सकता है। इस चढ़ाई में दोनों मतलब थे।

घने जंगल का आरंभ था। वृक्षों के हरे अंचल की छाया में थकी हुई दो युवतियां उनकी जड़ों पर सिर धरे हुए लेटी थीं। पथरीले टीलों पर पड़ती हुई घोड़ों की टापों के शब्द ने उन्हे चौंका दिया। वे अभी उठकर बैठ भी नहीं पाई थीं कि उनके सामने अश्वारोहियों का एक झुण्ड आ गया। भयानक भालों की नोक सीधी किए हुए स्वास्थ्य के तरुण तेज से उद्दीप्त जाट-युवकों का वह वीर दल था। स्त्रियों को देखते ही उनके सरदार ने कहा- माँ, तुमलोग कहाँ जाओगी?

अब फिरोजा और इरावती सामने खड़ी हो गई। सरदार ने घोड़े पर से उतरते हुए पूछा-फिरोजा, यह तुम हो बहन!

-हाँ भाई बलराज! मैं हूँ—और यह है इरावती! पूरी बात जैसे न सुनते हुए बलराज ने कहा-फिरोजा, अहमद से युद्ध होगा। इस जंगल को पार कर लेने पर तुर्क सेना जाटों का नाश कर देगी, इसलिए यहीं उन्हें रोकना होगा। तुमलोग इस समय कहाँ जाओगी?

-जहाँ कहो, बलराज। अहमद की छाया से तो मुझे भी बचना है। फिरोजा ने अधीर होकर कहा।

-डरो मत फिरोजा, यह हिंदुस्तान है, और यह हम हिंदुओं का धर्मयुद्ध है। गुलाम बनने का भय नहीं। —बलराज अभी यह कह ही रहा था कि वह चौंककर पीछे देखता हुआ बोल उठा— अच्छा, वे लोग आ ही गए। समय नहीं है। बलराज दूसरे ही क्षण में अपने घोड़े की पीठ पर था। अहमद की सेना सामने आ गई। बलराज को देखते ही उसने चिल्लाकर कहा—बलराज! यह तुम्हीं हो।

-हाँ, अहमद।

- तो हमलोग दोस्त भी बन सकते हैं। अभी समय है—कहते-कहते सहसा उसकी दृष्टि फिरोजा और इरावती पर पड़ी। उसने समस्त व्यवस्था भूलकर, तुरंत ललकारा—पकड़ लो इन औरतों को! उसी समय बलराज का भाला हिल उठा। युद्ध का प्रारंभ था।

जाटों की विजय के साथ युद्ध का अंत होने ही वाला था कि एक नया परिवर्तन हुआ। दूसरी ओर से तुर्क-सेना जाटों की पीठ पर थी। घायल बलराज का भीषण भाला अहमद की छाती में पार हो रहा था। निराश जाटों की रण-प्रतिज्ञा अपनी पूर्ति करा रही थी। मरते हुए अहमद ने देखा कि गजनी की सेना के साथ तिलक सामने खड़े थे। सब के अस्त्र तो रुक गए, परंतु अहमद के प्राण न रुके। फिरोजा उसके शव पर झुकी हुई रो रही थी और इरावती मूर्छित हो रहे बलराज का सिर अपनी गोद में लिए थी। तिलक ने विस्मित होकर यह दृश्य देखा।

बलराज ने जल का संकेत किया। इरावती के हाथों में तिलक ने जल का पात्र दिया। जल पीते ही बलराज ने आँखें खोलकर कहा—इरावती, अब मैं न मरूँगा?

तिलक ने आश्चर्य से पूछा-इरावती?

फिरोजा ने रोते हुए कहा—हाँ राजा साहब, इरावती?

मेरी दुखिया इरावती। मुझे क्षमा कर, मैं तुझे भूल गया था। -तिलक ने विनीत शब्दों में कहा।

-भाई! इरावती आगे कुछ न कह सकी, उसका गला भर आया था। उसने तिलक के पैर पकड़ लिये।

बलराज जाटों का सरदार है, इरावती रानी। चनाब का वह प्रांत इरावती की करूणा से हरा-भरा हो रहा है; किंतु फिरोजा की प्रसन्नता की वहीं समाधि बन गई— और वहीं वह झाड़ू देती, फूल चढ़ाती और दीप जलाती रही। उस समाधि की वह आजीवन दासी बनी रही।

सहपाठी

सत्यजीत राय

लेखक परिचय :

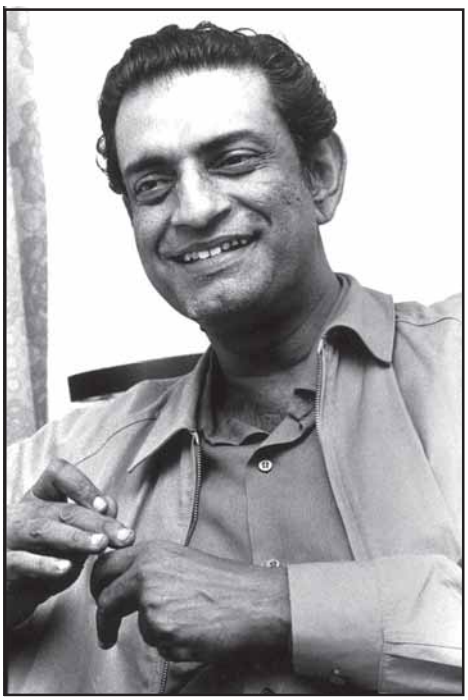

सत्यजीत राय जी का जन्म 2 मई 1921 को पश्चिम बंगाल के कोलकाता में हुआ था। सत्यजीत राय जी अपनी माता-पिता की इकलौती संतान थे। सत्यजीत राय जी सिर्फ 3 वर्ष के थे, जब उनके पिताजी श्री सुकुमार राय जी का निधन हो गया। इस घटना के बाद उनकी माता सुप्रभा राय जी ने उनका बड़ी मुश्किल से पालन पोषण किया था। उनकी माँ रवींद्र संगीत की मंजी हुई गायिका थी। उनके दादाजी 'उपेन्द्रकिशोर रे' एक लेखक एवं चित्रकार थे और इनके पिताजी भी बांग्ला में बच्चों को लिए रोचक कविताएँ लिखते थे। सत्यजीत राय ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से अर्थ-शास्त्र में बी0ए0 करने के उपरांत शांतिनिकेतन के विश्व भारती विश्वविद्यालय के ललित कला विभाग में उच्च शिक्षा के लिए दाखिला लिया। जहाँ चित्रकार नंदलाल बोस तथा विनोद बिहारी मुखर्जी का उनपर काफी प्रभाव पड़ा। हाँलाकि सन् 1942 में उन्होंने पाठ्यक्रम छोड़ दिया तथापि उनके ऊपर वहाँ बिताए दिनों का काफी प्रभाव पड़ा। बांग्ला कथा साहित्य पर भी 'रे का काफी प्रभाव पड़ा। बाल कथा साहित्य के साथ अपनी फिल्मी जीवन के अनुभवों पर उन्होंने जो रचनाएँ प्रस्तुत की, उससे उनके विविधमुखी व्यक्तित्व का पता चलता है।

प्रमुख रचनाएँ — फेलुदा, एकेर पिठे दुइ, जखन छोटो छिलाम, विषय चलचित्र, एकेई बोले शूटिंग, आवर फिल्म्स, देयर फिल्मस आदि।

पुरस्कार — ऑक्सफोर्ड विश्व विद्यालय से मानद डॉक्टरेट, दादा साहब फालके पुरस्कार, भारत रत्न।

मृत्यु — 23 अप्रैल 1992 ई0।

सहपाठी

अभी सुबह के सवा नौ बजे हैं।

मोहित सरकार ने गले में टाई का फंदा डाला ही था कि उसकी पत्नी अरुणा कमरे में आई और बोली, 'तुम्हारा फोन।'

'अब अभी कौन फोन कर सकता है भला!'

मोहित का ठीक साढ़े नौ बजे दफ़्तर जाने का नियम रहा है। अब घर से दफ़्तर को निकलते वक्त 'तुम्हारा फोन' सुन कर स्वभावत: मोहित की त्यौरियां चढ़ गईं।

अरुणा ने बताया, 'वह कभी तुम्हारे साथ स्कूल में पढ़ता था।'

'स्कूल में। अच्छा, नाम बताया?'

'उसने कहा कि जय नाम बताने पर ही वह समझ जाएगा।'

मोहित सरकार ने कोई तीस साल पहले स्कूल छोड़ा होगा। उसकी क्लास में चालीस लड़के रहे होंगे। अगर वह बड़े ध्यान से सोचे भी तो ज्यादा-से-ज्यादा बीस साथियों के नाम याद कर सकता है और इसके साथ उनका चेहरा भी। सौभाग्य से जय या जयदेव के नाम और चेहरे की याद अब भी उसे है, लेकिन वह क्लास के सबसे अच्छे लड़कों में एक था। गोरा सुंदर-सा चेहरा, पढ़ने-लिखने मे होशियार, खेल-कूद में भी आगे, हाई जंप में अव्वल। कभी-कभी वह ताश के खेल भी दिखाया करता और हाँ, कैसेबियांका की आवृति में उसने कोई पदक भी जीता था। स्कूल से निकलने के बाद मोहित ने उसके बारे में कभी कोई खोज-खबर नहीं ली।

लेकिन आज इतने सालों के बाद अपनी दोस्ती के बावजूद और कभी अपने सहपाठी रहे इस आदमी के बारे में कोई खास लगाव महसूस नहीं कर रहा था।

खैर, मोहित ने फोन का रिसीवर पकड़ा।

'हैलो...'

'कौन मोहित! मुझे पहचान रहे हो भाई, मैं वही तुम्हारा जय... जयदेव बोस। बालीगंज स्कूल का सहपाठी।'

'भई अब आवाज से तो पहचान नहीं रहा हूँ चेहरा ज़रूर याद है, बात क्या है?'

'तुम तो अब बड़े अफसर हो गए हो भई। मेरा नाम तुम्हें अब तक याद रहा, यही बहुत है।'

'अरे यह सब छोड़ो, बताओ बात क्या है?'

'बस यों ही थोड़ी ज़रूरत थी। एक बार मिलना चाहता हूँ तुम से।'

'कब?'

'तुम जब कहो। लेकिन थोड़ी जल्दी हो तो अच्छा...'

'तो फिर आज ही मिलो। मैं शाम को छह बजे घर आ जाता हूँ, तुम सात बजे आ सकोगे?'

'क्यों नहीं ज़रूर आऊँगा, अच्छा तो धन्यवाद। तभी सारी बातें होंगी।'

अभी हाल ही में खरीदी गई आसमानी रंग की कार में दफ्तर जाते हुए मोहित सरकार ने स्कूल में घटी कुछ घटनाओं को याद करने की कोशिश की। हेड-मास्टर गिरींद्र सुर की पैनी नजर और बेहद गंभीर स्वभाव के बाबजूद स्कूली दिन भी सचमुच कैसी-कैसी खुशियों से भरे दिन थे। मोहित खुद भी एक अच्छा विद्यार्थी था। शंकर, मोहित और जयदेव-इन तीनों में ही प्रतिद्वंद्विता चलती रहती थी। पहले, दूसरे और तीसरे नंबर पर इन्हीं तीनों का बारी-बारी कब्जा रहता। छठी से ले कर मोहित सरकार और जयदेव बोस एक साथ ही पढ़ते रहते थे। कई बार एक ही बेंच पर बैठ कर पढ़ाई की थी। फुटबॉल में भी दोनों का बराबरी का स्थान था। मोहित राइट इन खिलाड़ी था तो जयदेव राइट आउट। तब मोहित को जान पड़ता कि यह दोस्ती आज की नहीं, युगों की हैं। लेकिन स्कूल छोड़ने के बाद दोनों के रास्ते अलग-अलग हो गए। मोहित के पिता एक रईस आदमी थे, कलकत्ता के नामी वकील। स्कूल की पढ़ाई खत्म करने के बाद, मोहित का दाखिला अच्छे से कॉलेज में हो गया था और यहाँ की पढ़ाई समाप्त हो जाने के दो साल बाद ही उसकी नियुक्ति एक बड़ी कारोबारी कंपनी के अफसर के रूप में हो गयी। जयदेव किसी दूसरे शहर में किसी कॉलेज में भर्ती हो गया था। दरअसल उसके पिताजी की नौकरी बदली वाली थी। सबसे हैरानी की बात यह थी कि कॉलेज में जाने के बाद मोहित ने जयदेब की कमी को कभी महसूस नहीं किया। उसकी जगह कॉलेज के एक दूसरे दोस्त ने ले ली। बाद में यह दोस्त भी बदल गया, जब कॉलेज जीवन भी पूरा हो जाने के बाद मोहित की नौकरी वाली जिन्दगी शुरु हो गई। मोहित अपनी दफ्तरी दुनिया में चार बड़े अफसरों में से एक है और उसके सबसे अच्छे दोस्तों में उसका ही एक सहकर्मी है। स्कूल के साथियों में एक प्रज्ञान सेनगुप्त है। लेकिन स्कूल की यादों में प्रज्ञान की कोई जगह नहीं हैं। लेकिन जयदेव- जिस के साथ पिछले तीस सालों से मुलाकात तक नहीं हुई हैं... उसकी यादों ने अपनी काफी जगह बना रखी हैं। मोहित ने उन पुरानी बातों को याद करते हुए इस बात की सच्चाई को बड़ी गहराई से महसूस किया।

मोहित का दफ्तर सेंट्रल एवेन्यू में हैं। चौरंगी और सुरेन्द्र बनर्जी रोड के मोड़ पर पहुँचते ही गाड़ियों की भीड़, बसों के हॉर्न और धुएँ से मोहित सरकार की यादों की दुनिया ढह गई और वह सामने खड़ी दुनिया के सामने था। अपनी कलाई घड़ी पर नजर दौड़ाते हुए ही वह समझ गया कि वह आज तीन मिनट देर से दफ्तर पहुँच रहा है।

दफ्तर का काम निपटा कर, मोहित जब ली रोड स्थित अपने घर पहुँचा तो बालीगंज गवर्नमेंट स्कूल के बारे में उसके मन में रत्ती भर याद नहीं बची थी। यहाँ तक कि वह सुबह टेलीफोन पर हुई बातों के बारे में भी भूल चुका था। उसे इस बात की याद तब आई, जब उसका नौकर विपिन ड्राइंग रूम में आया और उसने उस के हाथों में एक पुर्जा थमाया। यह किसी लेखन-पुस्तिका में से फाड़ा गया पन्ना था... मोड़ा हुआ। इस पर अँग्रेजी में लिखा था - 'जयदेव बोस एज पर अपाइटमेंट।'

रेडियो पर बी.बी.सी. से आ रही खबरों को सुनना बंद कर मोहित ने विपिन को कहा, 'उसे अन्दर आने को कहो।'

लेकिन उसने दूसरे ही पल यह महसूस किया कि जय इतने दिनों बाद मुझसे मिलने आ रहा है, उसके नाश्ते के लिए कुछ मँगा लेना चाहिए था। दफ्तर से लौटते हुए पार्क स्ट्रीट से वह बड़े आराम से केक या पेस्ट्री वगैरह कुछ भी ला ही सकता था, लेकिन उसे जय के आने की बात याद ही नहीं रही। पता नहीं, उसकी घरवाली ने इस बारे में कोई इंतजाम कर रखा है या नहीं।

'पहचान रहे हो ?'

इस सवाल को सुन कर और इसके बोलने वाले की ओर देख कर मोहित सरकार की मनोदशा कुछ ऐसी हो गई कि बैठक वाले कमरे की सीढ़ी पार करने के बाद भी उसने नीचे की ओर एक कदम और बढ़ा दिया था – जब कि वहाँ कोई सीढ़ी नहीं थी।

कमरे की चौखट पार करने के बाद, जो सज्जन अंदर दाखिल हुए थे, उन्होंने एक ढीली-ढाली सूती पतलून पहन रखी थी। इसके ऊपर एक घटिया छापे वाली सूती कमीज। दोनों पर कभी इस्तरी की गई हो, ऐसा नहीं जान पड़ा। कमीज की कॉलर से जो सूरत झाँक रही थी, उसे देख कर मोहित अपनी याद में बसे जयदेव से उसका कोई तालमेल नहीं बिठा सका। आने वाले का चेहरा सूखा, गाल पिचके, आँखे धँसी, देह का रंग धूप में तप-तप कर काला पड़ गया था। इस चेहरे पर तीन-चार दिनों की कच्ची-पक्की मूँछे उगीं थी। माथे के ऊपर एक मस्सा और कनपटियों पर बेतरतीब ढंग से फैले ढेर सारे पके हुए बाल।

उस आदमी ने यह सवाल झूठी हँसी के साथ पूछा था- उसकी दाँतों की कतार भी मोहित को दिख पड़ी। पान खा-खा कर सड़ गए ऐसे दाँतों के साथ हँसने वाले को सबसे पहले अपना मुँह हथेली से ढाँप लेना चाहिए।

'काफी बदल गया हूँ न ?'

'बैठो।'

मोहित अब तक खड़ा था। सामने वाले सोफे पर उसके बैठ जाने के बाद मोहित भी अपनी जगह पर बैठ गया। मोहित के विद्यार्थी जीवन की तस्वीर उसके एलबम में पड़ी है। उस तस्वीर में चौदह साल के मोहित के साथ आज के मोहित को पहचान पाना बहुत मुश्किल नहीं है। तो फिर सामने बैठे जय को पहचान पाना इतना कठिन क्यों हो रहा है ? सिर्फ तीस सालों में क्या चेहरे में इतना बदलाव आ जाता हैं ?

'तुम्हें पहचान पाने में कोई मुश्किल नहीं हो रही है। रास्ते पर भी देख लेता तो पहचान जाता।' भला आदमी आते ही शुरू हो गया था, 'दरअसल मुझ पर मुसीबतों का पहाड़-सा टूट पड़ा है। कॉलेज में ही था कि पिताजी गुजर गए। मैं पढ़ना-लिखना छोड़ कर नौकरी की तलाश में भटकता रहा और बाकी तुम्हें पता है ही। अच्छी किस्मत और सिफारिश न हो तो आज के जमाने में हम जैसे लोगों के लिए...'

'चाय तो पियोगे ?'

'चाय, हाँ, लेकिन।'

मोहित ने विपिन को बुला कर चाय लाने को कहा। इसके साथ उसे यह सोच कर राहत मिली कि केक या मिठाई न भी हो तो कोई खास बात नहीं। इसके लिए बिस्कुट ही काफी होगा।

'ओह!' उस भले आदमी ने कहा, 'आज दिन भर न जाने कितनी पुरानी बातें याद करता रहा। तुम्हें क्या बताऊँ...'

मोहित का भी कुछ समय ऐसे ही बीता है। लेकिन उसने ऐसा कुछ कहा नहीं।

'एल.सी.एम. और जी.सी.एम. की बातें याद हैं?'

मोहित को इस बारे में पता न था लेकिन प्रसंग आते ही उसे याद आ गया, एल.सी.एम. यानी पी.टी. मास्टर लालचांद मुखर्जी और जी.सी.एम. यानी गणित के टीचर गोपेन्द्र चंद्र मितिर।

'स्कूल में ही पानी की टंकी के पीछे हम दोनों को जबरदस्ती आसपास खड़ा कर बॉक्स कैमरे से किसी ने हमारी तस्वीर खींची थी, याद है?'

अपने होठों के कोने पर एक मीठी मुस्कान चिपका कर मोहित ने यह जता दिया कि उसे अच्छी तरह याद है। आश्चर्य, ये सब तो सच्ची बातें हैं और अब भी अगर यह जयदेव न हो तो इतनी बातों के बारे में इसे पता कैसे चला?

'स्कूली जीवन के वे पाँचों साल, मेरे जीवन के सबसे अच्छे साल थे।' आने वाले ने बताया और फिर अफसोस जताया, 'वैसे दिन अब दोबारा कभी नहीं आएँगे भाई!'

'लेकिन तुम तो लगभग मेरी उम्र के हो।' मोहित इस बात को कहे बिना रह नहीं पाया।

'मैं तुमसे कोई तीन-चार महीने छोटा ही हूँ।'

'तो फिर तुम्हारी यह हालत कैसे हुई? तुम तो गंजे हो गए?'

'परेशानी और तनाव के सिवा और क्या वजह होगी?' आगंतुक ने बताया, 'हालाँकि गंजापन तो हमारे परिवार में पहले से ही रहा है। मेरे बाप और दादा दोनों गंजे हो गए थे सिर्फ पैंतीस साल की उम्र में। मेरे गाल धँस गए हैं-हाड़-तोड़ मेहनत की वजह से और ढंग का खाना कहाँ नसीब होता है? और तुम लोगों की तरह मेज-कुर्सी पर बैठ कर तो हम लोग काम नहीं करते। पिछले सात साल से एक कारखाने में काम कर रहा हूँ, इसके बाद मेडिकल सेल्समैन के नाते इधर-उधर की भाग-दौड़, बीमे की दलाली, इसकी दलाली, उसकी दलाली। किसी एक काम में ठीक से जुटे रहना अपने नसीब में कहाँ! अपने ही जाल में फँसी मकड़ी की तरह इधर-उधर घूमता रहता हूँ। कहते हैं न देह धरे का दंड। देखना है यह देह भी कहाँ तक साथ देती है। तुम तो मेरी हालत देख ही रहे हो!'

विपिन चाय ले आया था। चाय के साथ संदेश और समोसा भी। गनीमत है, पत्नी ने इस बात का ख्याल रखा था। लेकिन अपने सहपाठी की इस टूटी-फूटी तस्वीर देख कर वह क्या सोच रही होगी...इसका अंदाज उसे नहीं हो पाया।

'तुम नहीं लोगे?' आगंतुक ने पूछा।

मोहित ने सिर हिला कर कहा, 'नहीं, अभी-अभी पी है।'

'संदेश तो ले लो।'

'नहीं तुम शुरू तो करो।'

भले आदमी ने समोसा उठा कर मुँह में रखा और इसका एक टुकड़ा चबाते-चबाते बोला, 'बेटे का इम्तिहान सिर पर है और मेरी परेशानी यह है मोहित भाई कि मैं उसके लिए फीस के रूपये कहाँ से जुटाऊँ? कुछ समझ में नहीं आता' अब आगे कुछ कहने की जरूरत नहीं थी। मोहित समझ गया। इसके आने के पहले ही उसे समझ लेना चाहिए था कि क्या माजरा है? आर्थिक सहायता और इसके लिए प्रार्थना। आखिर यह कितनी रकम की मदद माँगेगा? अगर बीस-पच्चीस रूपये दे देने पर भी पिंड छूट सके तो वह खुशकिस्मती ही होगी और अगर यह मदद नहीं दी गई तो यह बला टल पाएगी ऐसा नहीं कहा जा सकता।

'पता है, मेरा बेटा बड़ा होशियार है। अगर उसे अभी यह मदद नहीं मिली तो उसकी पढ़ाई बीच में ही रूक जाएगी। मैं जब-जब इस बारे में सोचता हूँ तो मेरी रातों की नींद हराम हो जाती है।'

प्लेट से दूसरा समोसा उड़ चुका था। मोहित ने मौका पा कर किशोर जयदेव के चेहरे से इस आगंतुक के चेहरे को मिला कर देखा और अब उसे पूरा यकीन हो गया कि उस बालक के साथ इस अधेड़ आदमी का कहीं कोई मेल नहीं।

'इसलिए कह रहा था कि' — चाय की चुस्की भरते आगंतुक ने आगे कहा, 'अगर तुम सौ डेढ़ सौ रूपये अपने इस पुराने दोस्त को दे सको तो...'

'वेरी सॉरी।'

'क्या?'

मोहित ने मन-ही-मन यह सोच रखा था कि अगर बात रूपये-पैसे पर आई तो वह एकदम 'ना' कर देगा। लेकिन अब जा कर उसे लगा कि इतनी रूखाई से मना करने की जरूरत नहीं थी। इसलिए अपनी गलती की मरम्मत करते हूए उसने बड़ी नरमी से कहा, 'सॉरी भाई। अभी मेरे पास कैश रूपये नहीं हैं।'

'मैं कल आ सकता हूँ।'

'मैं कलकत्ता के बाहर रहूँगा। तीन दिनों के बाद लौटूँगा। तुम रविवार को आ जाओ।'

'रविवार को?'

आगंतुक थोड़ी देर तक चुप रहा। मोहित ने भी मन-ही-मन में कुछ ठान लिया था। यह वही जयदेव है, इस का कोई प्रमाण नहीं है। कलकत्ता के लोग एक-दूसरे को ठगने के ही हजार तरीके जान गए हैं। किसी के पास से तीस साल पहले के बालीगंज स्कूल की कुछ घटनाओं के बारे में जान लेना कोई मुश्किल काम नहीं था। वही सही।

'मैं रविवार को कितने बजे आ जाऊँ?'

'सबेरे-सबेरे ही ठीक रहेगा।'

शुक्रवार को ईद की छुट्टी है। मोहित ने पहले से ही तय कर रखा है कि यह अपनी पत्नी के साथ बारूईपुर के एक मित्र के यहाँ उनके बागान बाड़ी में जा कर सप्ताहांत मनाएगा। वहाँ दो-तीन दिन तक रूक कर रविवार की रात को ही घर लौट पाएगा। इसलिए वह भला आदमी जब रविवार की सुबह घर पर आयेगा तो मुझसे मिल नहीं पायेगा। इस बहाने की जरूरत नहीं पड़ती, अगर मोहित ने दो टूक शब्द में उससे 'ना' कह दिया होता। लेकिन ऐसे भी लोग होते हैं जो एकदम ऐसा नहीं कह सकते। मोहित ऐसे ही स्वभाव का आदमी है। रविवार को उससे मुलाकात न होने के बाबजूद वह कोई दूसरा तरीका ढूँढ निकाले तो मोहित उससे भी बचने की कोशिश करेगा। शायद इसके बाद किसी दूसरी परेशानी का सामना करने की नौबत नहीं आएगी।

आगंतुक ने आखिरी बार चाय की चुस्की ली और कप को नीचे रखा था कि कमरे में एक और सज्जन आ गए। ये मोहित के अंतरंग मित्र थे - वाणीकांत सेन। दो अन्य सज्जनों के भी आने की बात है, इसके बाद यहीं ताश का अड्डा जमेगा। उसने भले आगंतुक की तरफ शक की नजरों से देखा। मोहित इसे भाँप गया। आगंतुक के साथ अपने दोस्त का परिचय कराने की बात मोहित बुरी तरह टाल गया।

'अच्छा तो फिर मिलेंगे, अभी चलता हूँ।' कह कर अजनबी आगंतुक उठ खड़ा हुआ, 'तू मुझ पर यह उपकार कर दे, मैं सचमुच तेरा ऋणी रहूँगा।'

उस भले आदमी के चले जाने के बाद वाणीकांत ने मोहित की ओर हैरानी से देखा और पूछा, 'यह आदमी तुमसे 'तू' कह कर बातें कर रहा था - बात क्या है?'

'इतनी देर तक तो तुम ही कहता रहा था। बाद में तुम्हें सुनाने के लिए ही अचानक तू कह गया।'

'कौन है यह आदमी?'

मोहित कोई जवाब दिए बिना बुक-शेल्फ की ओर बढ़ गया और उस पर से एक पुराना फोटो एलबम बाहर निकाल लाया। फिर इसका एक पन्ना उलट कर वाणीकांत को सामने बढ़ा दिया।

'यह तुम्हारे स्कूल का ग्रुप है शायद?'

'हाँ, बोटोनिक्समें हम सब पिकनिक के लिए गए थे।' मोहित ने बताया।

'ये पाँचों कौन-कौन हैं?'

'मुझे नहीं पहचान रहे?'

'रूको, जरा देखने तो दो।'

एलबम को अपनी आँखों के थोड़ा नजदीक ले जाते ही बड़ी आसानी से वाणीकांत ने अपने मित्र को पहचान लिया।

'अच्छा, अब मेरी बाई ओर खड़े इस लड़के को अच्छी तरह देखी।'

तस्वीर को अपनी आँखों के कुछ और नजदीक ला कर वाणीकांत ने कहा, 'हाँ, देख लिया।'

'अरे, यही तो है वह भला आदमी, जो अभी-अभी यहाँ से उठ कर गया।' मोहित ने बताया।

'स्कूल से ही तो जुआ खेलने की लत नहीं लगी है इसे?' एलबम को तेजी से बंद कर इसे सोफे पर फेंकते हुए वाणीकांत ने फिर कहा, 'मैंने इस आदमी को कम-से-कम तीस-बत्तीस बार रेस के मैदान में देखा है।'

'तुम ठीक कह रहे हो,' मोहित सरकार ने हामी भरी और इस के बाद आगंतुक के साथ क्या-क्या बातें हुई, इस बारे में बताया।

'अरे, थाने में खबर कर दो।' वाणीकांत ने उसे सलाह दी, 'कलकत्ता अब ऐसे ही चोरों, लुटेरों और उचक्कों का डिपो हो गया है। इस तस्वीर वाले लड़के का ऐसा पक्का जुआड़ी बन जाना नामुमकिन है असंभव।'

मोहित हौले-से मुस्कुराया और फिर बोला, 'रविवार को जब मैं उसे घर पर नहीं मिलूँगा तो पता चलेगा। मुझे लगता है इस के बाद यह इस तरह की हरकतों से बाज आएगा।'

अपने बारूईपुर वले मित्र के यहाँ पोखर की मच्छी, पॉल्टरी के ताजे अंडे और पेड़ों में लगे आम, अमरूद, जामुन, डाब और सीने से तकिया लगा ताश खेल कर, तन-मन की सारी थकान और जकड़न दूर कर मोहित सरकार रविवार की रात ग्यारह बजे जब अपने घर लौटा तो अपने नौकर विपिन से उसे खबर मिली कि उस दिन शाम को जो सज्जन आए थे - वे आज सुबह भी घर आए थे।

'कुछ कह कर गए हैं?'

'जी नहीं। विपिन ने बताया।'

चलो जान बची। एक छोटी-सी जुगत से बड़ी बला टली। अब वह नहीं आएगा। पिंड छूटा।

लेकिन नहीं। आफत रात भर के लिए ही टली थी। दूसरे दिन सुबह यही कोई आठ बजे, मोहित जब अपनी बैठक में अखबार पढ़ रहा था तो विपिन ने उसके सामने एक और तहाया हुआ पुर्जा ला कर रख दिया। मोहित ने उसे खोल कर देखा। वह तीन लाइनों वाली चिट्ठी थी - 'भाई मोहित, मेरे दाएँ पैर में मोच आ गई है, इसलिए बेटे को भेज रहा हूँ। सहायता के तौर पर जो थोड़ा-बहुत बन सके, इसके हाथ में दे देना, बड़ी कृपा होगी। निराश नहीं करोगे, इस आशा के साथ, इति।' - तुम्हारा जय

मोहित समझ गया अब कोई चारा नहीं हैं। जैसे भी हो, थोड़ा-बहुत देकर जान छुड़ानी है - यह तय कर उसने नौकर को बुलाया और कहा, 'ठीक है, छोकरे को बुलाओ।'

थोड़ी देर बाद ही, एक तेरह-चौदह साल का लड़का दरवाजे से अंदर दाखिल हुआ। मोहित के पास आ कर उसने उसे प्रणाम किया और फिर कुछ कदम पीछे हट कर चुपचाप खड़ा हो गया।

मोहित उसकी तरफ कुछ देर तक बड़े गौर से देखता रहा। इसके बाद कहा, 'बैठ जाओ।'

लड़का थोड़ी देर तक किसी उधेड़बुन में पड़ा रहा, फिर सोफे के एक किनारे अपने दोनों हाथों को गोद में रख कर बैठ गया।

'मैं अभी आया।'

मोहित ने दूसरे तल्ले पर जा कर अपनी घरवाली के आँचल से चाबियों का गुच्छा खोला। इसके बाद अलमारी खोल कर पचास रूपये के चार नोट बाहर निकालें, इन्हें एक लिफाफे में भरा और अलमारी बंद कर नीचे बैठकखाने में वापस आया।

'क्या नाम है तुम्हारा?'

'जी, संजय कुमार बोस।' 'इसमें रूपये हैं। बड़ी सावधानी से ले जाना होगा।'

लड़के ने सिर हिला कर हामी भरी।

'कहाँ रखोगे?'

'इधर, ऊपर वाली जेब में।'

'ट्राम से जाओगे या बस से?'

'जी, पैदल।'

'पैदल? तुम्हारा घर कहाँ है?'

'मिर्जापुर स्ट्रीट में।'

'भला इतनी दूर पैदल जाओगे?'

'पिताजी ने पैदल ही आने को कहा है।'

'अच्छा, तो फिर एक काम करो। तुम एक घंटा यहीं बैठो, ठीक है। नाश्ता कर लो। यहाँ ढेर सारी किताबें हैं, इन्हें देखो। मैं नौ बजे दफ्तर निकलूँगा। मुझे दफ्तर छोड़ने के बाद मेरी गाड़ी तुम्हें तुम्हारे घर छोड़ देगी। तुम ड्राइवर को अपना रास्ता बता सकोगे न?' मोहित ने पूछा।

लड़के ने सिर हिला कर कहा, 'जी हाँ।'

मोहित ने विपिन को बुलाया और इस लड़के संजय बोस के लिए चाय वगैरह लाने का आदेश दिया। फिर दफ्तर के लिए तैयार होने ऊपर अपने कमरे में चला आया।

आज वह अपने को बहुत ही हल्का महसूस कर रहा था और साथ ही बहुत ही खुश।

जय को देख कर पहचान न पाने के बावजूद, उसके बेटे संजय में उसने अपना तीस साल पुराना सहपाठी पा लिया था।

ElFæFF¼=+ <°F0 Þ¡FU¶F õFFùF

पारिभाषिक शब्दावली

1.	Abatement	—	उपशमन/कमी
2.	Abeyance	—	आस्थजन
3.	Abolition	—	उन्मूलन
4.	Accrue	—	प्रोदभूत होना
5.	Aggregate	—	कुल योग
6.	Basic Pay	—	मूल वेतन
7.	Bond	—	बंध पत्र
8.	Cadre	—	संवर्ग
9.	Capital	—	पूँजी
10.	Caution	—	सावधान/सावधानी
11.	Census	—	जनगणना
12.	Convention	—	रूढ़ि
13.	Defence	—	रक्षा
14.	Delegation	—	प्रतिनिधि मण्डल
15.	Delimitation	—	परिसीमन
16.	Disparity	—	असमानता
17.	Educational Qualification	—	शैक्षिक योग्यता
18.	Employer	—	नियोक्ता
19.	Endorse	—	समर्थ करना
20.	Entertainment	—	मनोरंजन
21.	Financial Grant	—	वित्तीय अनुदान
22.	Forwarding Note	—	अग्रेषण टिप्पणी

23.	Fundamental	—	मौलिक/ आधारभूत
24.	Graduate	—	स्नातक
25.	Grant	—	अनुदान
26.	Honorarium	—	मानदेय
27.	Indemnity	—	क्षतिपूर्ति
28.	Insinuation	—	वक्रोक्ति/परोक्ष संकेत निष्ठा
30.	Interception	—	अन्तरावरोध
31.	Interim Relief	—	अंतरिम राहत
32.	Judgement	—	निर्णय
33.	Judicial	—	न्यायिक
34.	Jurisdiction	—	न्यायाधिकार क्षेत्र
35.	Maintenance	—	संभरण/अनुरक्षण
36.	Manifesto	—	घोषणा पत्र
37.	Minutes	—	कार्यवृत्त
38.	Non-taxable	—	करमुक्त
39.	Oath	—	शपथ
40.	Offense	—	अपराध
41.	Petition	—	याचिका
42.	Postage	—	डाक
43.	Preliminary	—	प्रारम्भिक
44.	Prescribed	—	वर्णित
45.	Private	—	निजी
46.	Probation Period	—	परिवीक्षा काल
47.	Protocol	—	नयाचार
48.	Proviso	—	शर्त/परन्तुक
49.	Recurring	—	आवर्ती
50.	Referendum	—	जनमत संग्रह

SEMESTER - II

साहित्य 'क'

काव्य

सखि वे मुझसे कह कर जाते

मैथिलीशरण गुप्त

कवि परिचय :

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म झाँसी के चिरगाँव में 3 अगस्त, सन 1866 ई0 में हुआ था। मैथिलीशरण गुप्त हिंदी साहित्य के प्रथम कवि के रूप में माने जाते रहे हैं। पवित्रता, नैतिकता और परंपरागत मानवीय सम्बन्धों की रक्षा आदि मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य के प्रथम गुण हुआ करते थे। गुप्त जी की कीर्ति भारत में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय बहुत ही प्रभावशाली सिद्ध हुई थी। इसी कारण से महात्मा गांधी जी ने इन्हें राष्ट्रकवि की उपाधि से सम्मानित किया था और आज भी हम सब लोग उनकी जयंती को एक कवि दिवस के रूप में मनाते हैं। इनके पिताजी का नाम सेठ रामचरण गुप्त और माता का नाम काशीबाई था। इनके पिता रामचरण गुप्त जी एक निष्ठावान् प्रसिद्ध राम भक्त और काव्यानुरागी थे। गुप्त ने सरस्वती सहित विभिन्न पत्रिकाओं में कविताएँ लिखकर हिंदी साहित्य की दुनिया में प्रवेश किया। 1909 में, उनका पहला खण्ड काव्य, रंग में भंग, इंडियन प्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया था। भारत भारती (1912-1913) के साथ, उनकी राष्ट्रवादी कविताएँ उन भारतीयों के बीच लोकप्रिय हो गईं, जो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनकी इस पुस्तक में उन्हें 'राष्ट्रवादी' कवि की पदवी प्रदान की। उनकी अधिकांश कविताएँ रामायण, महाभारत, बौद्ध कहानियों और प्रसिद्ध धार्मिक नेताओं के जीवन के इर्द-गिर्द घूमती हैं। उनकी प्रसिद्ध कृति साकेत रामायण के लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के इर्द-गिर्द घूमती है, जबकि उनकी दूसरी कृति यशोधरा गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा के इर्द-गिर्द घूमती है। उनकी कृतियों में देश का अतीत, वर्तमान और भविष्य बोलता है। वह मानववादी, नैतिक और सांस्कृतिक काव्यधारा के विशिष्ट कवि थे। उनके दो महाकाव्य, बीस खंडकाव्य, सत्रह गीतिकाव्य, चार नाटक और गीतिनाट्य, दो संस्मरणात्मक गद्य-कृतियाँ, चार निराख्यानक निबंध और अठारह अनूदित रचनाएँ उपलब्ध हैं।

प्रमुख कृतियाँ-महाकाव्य : साकेत (1931) खंडकाव्य : रंग में भंग (1909), जयद्रथ-वध (1910), शकुंतला (1914), पंचवटी (1915), किसान (1916), सैरंध्री (1927), वकसंहार (1927), वन वैभव (1927), शक्ति (1927), यशोधरा (1932), द्वापर (1936) ।

मैथिलीशरण गुप्त जी का देहावसान 12 दिसंबर, 1964 को चिरगांव में ही हुआ। इनके स्वर्गवास से हिन्दी साहित्य को जो क्षति पहुंची, उसकी पूर्ति संभव नहीं है।

õFP&F, æF ÛF¤FõF =+Ù=+Þ ¡FF¶F

मैथिलीशरण गुप्त

सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ?
मुझको बहुत उन्होंने माना
फिर भी क्या पूरा पहचाना ?
मैंने मुख्य उसी को जाना
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में -
क्षात्र-धर्म के नाते
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किसपर विफल गर्व अब जागा ?
जिसने अपनाया था, त्यागा;
रहे स्मरण ही आते !

सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते ?
गये तरस ही खाते !
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
जायें, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से ?
आज अधिक वे भाते !
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व-अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे,
पर क्या गाते-गाते ?
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

राजे ने अपनी रखवाली की

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

कवि परिचय :

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का जन्म वसंत पंचमी रविवार 21 फरवरी 1896 के दिन हुआ था, अपना जन्मदिन वसंत पंचमी को ही मानते थे। उनकी एक कहानी संग्रह 'लिली' 21 फरवरी 1899 जन्म तिथि पर ही प्रकाशित हुई थी। रविवार को इनका जन्म हुआ था इसलिए वह सूर्ज कुमार के नाम से जाने जाते थे। उनके पिताजी का नाम पंडित राम सहाय था, वह सिपाही की नौकरी करते थे। उनकी माता का नाम रूक्मणी था। जब निराला जी 3 साल के थे तब उनकी माता की मृत्यु हो गई थी, उसके बाद उनके पिता ने उनकी देखभाल की। निराला का व्यक्तित्व घनघोर सिद्धांतवादी और साहसी था। वह सतत संघर्ष-पथ के पथिक थे। यह रास्ता उन्हें विक्षिप्तता तक भी ले गया। उन्होंने जीवन और रचना को अनेक स्तरों पर जिया, इसका ही निष्कर्ष है कि उनका रचना-संसार इतनी विविधता और समृद्धता लिए हुए है। निराला की रचनाओं में अनेक प्रकार के भाव पाए जाते हैं। यद्यपि वे खड़ी बोली के कवि थे, पर ब्रजभाषा व अवधी भाषा में भी कविताएँ गढ़ लेते थे। उनकी रचनाओं में कहीं प्रेम की सघनता है, कहीं आध्यात्मिकता तो कहीं विपन्नों के प्रति सहानुभूति व सम्वेदना, कहीं देश-प्रेम का ज़ज़्बा तो कहीं सामाजिक रूढ़ियों का विरोध व कहीं प्रकृति के प्रति झलकता अनुराग। 1920 ई के आसपास उन्होंने अपना लेखन कार्य शुरू किया था। उनकी सबसे पहली रचना 'एक गीत' जन्म भूमि पर लिखी गई थी। 1916 ई में उनके द्वारा लिखी गई 'जूही की कली' बहुत ही लंबे समय तक के लिए प्रसिद्ध रही थी और वह 1922 ई में प्रकाशित हुई थी।

सूर्यकांत त्रिपाठी के काव्य संग्रह—अनामिका (1923), परिमल (1930), गीतिका (1936), अनामिका (द्वितीय) (1939), तुलसी दास (1939), कुकुरमुत्ता (1942) अणिमा (1943), बेला (1946), नये पत्ते (1946), अर्चना (1950) आराधान (1953), गीतकुंज (1954), सांध्य का कली, अपरा।

उपन्यास — (1931) अप्सरा (1933), अलका (1936), प्रभावती (1936), निरूपमा (1936), कुल्लीभाट (1938 - 39) आदि। कहानी संग्रह - लिलि (1934) सखी (1935) सुकुल की बीबी (1938 - 39)।

15 अक्टूबर, 1961 को अपनी यादें छोड़कर निराला इस लोक को अलविदा कह गये पर मिथक और यथार्थ के बीच अन्तर्विरोधों के बावजूद अपनी रचनात्मकता को यथार्थ की भावभूमि पर टिकाये रखने वाले निराला आज भी हमारे बीच जीवन्त हैं। इनकी मृत्यु प्रयाग में हुई थी।

ÞF¡F ÎF EÑFÎFU Þ&FæFFáFU =+U

राजे ने अपनी रखवाली की;

किला बनाकर रहा;

बड़ी-बड़ी फ़ौजें रखीं।

चापलूस कितने सामन्त आए।

मतलब की लकड़ी पकड़े हुए।

कितने ब्राह्मण आए

पोथियों में जनता को बाँधे हुए।

कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाए,

लेखकों ने लेख लिखे,

ऐतिहासिकों ने इतिहास के पन्ने भरे,

नाट्य-कलाकारों ने कितने नाटक रचे

रंगमंच पर खेले।

जनता पर जादू चला राजे के समाज का।

लोक-नारियों के लिए रानियाँ आदर्श हुईं।

धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ।

लोहा बजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर।

ख़ून की नदी बही।

आँख-कान मूंदकर जनता ने डुबकियाँ लीं।

आँख खुली-राजे ने अपनी रखवाली की।

बसंती हवा

केदारनाथ अग्रवाल

कवि परिचय :

हिंदी साहित्य में प्रगतिशील काव्य-धारा के एक प्रमुख कवि केदारनाथ अग्रवाल है। केदारनाथ अग्रवाल का जन्म 1 अप्रैल, 1911 को उत्तर प्रदेश के बाँदा नगर के कमासिन गाँव में एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। इनके पिताजी हनुमान प्रसाद अग्रवाल और माताजी घसिट्टो देवी थी। केदार जी के पिताजी स्वयं कवि थे और उनका एक काव्य संकलन 'मधुरिम' के नाम से प्रकाशित भी हुआ था। केदार जी का आरंभिक जीवन कमासिन के ग्रामीण माहौल में बीता और शिक्षा दीक्षा की शुरूआत भी वहीं हुई। तदनंतर अपने चाचा मुकुंदलाल अग्रवाल के संरक्षण में उन्होंने शिक्षा पाई। केदार जी की काव्य-यात्रा का आरंभ लगभग 1930 से माना जा सकता है।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित केदारनाथ जी जनसाधारण के जीवन की गहरी व व्यापक संवेदना को अपने काव्य में सजाते दिखाई पड़ते है। साथ ही कवि की लेखनी कभी-कभी गाँव के उन्मुक्त वातावरण में भी रम-सी जाती है। उनके काव्य का एक पहलू मिट्टी की सोंधी खुशबू से भी जुड़ा हुआ है। यही कारण हैं कि इनकी कविताओं में भारत की धरती की सुगंध और आस्था का स्वर भी सुनाई पड़ता है।

प्रमुख कृतियाँ — युग की गंगा, फूल नहीं रंग बोलते हैं, पंख और पतवार, गुलमेहंदी, जमुन जल तुम, अपूर्वा, आग का आइना आदि। जो शिलाएँ तोड़तें हैं, नींद के बादल। 'अपूर्वा' के लिए 1986 का साहित्य अकादमी पुरस्कार इन्हें मिला। कविता संग्रह 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से सम्मानित हुआ।

इनकी मृत्यु 22 जून 2000।

बसंती हवा

हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ।

सुनो बात मेरी–
अनोखी हवा हूँ।
बड़ी बावली हूँ,
बड़ी मस्तमौला।

नहीं कुछ फिकर है,
बड़ी ही निडर हूँ।
जिधर चाहती हूँ,
उधर घूमती हूँ,
मुसाफिर अजब हूँ।

न घर–बार मेरा,
न उद्देश्य मेरा,
न इच्छा किसी की,
न आशा किसी की,
न प्रेमी न दुश्मन,
जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ।
हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ।

जहाँ से चली मैं
जहाँ को गई मैं –
शहर, गाँव, बस्ती,
नदी, रेत, निर्जन,

हरे खेत, पोखर,
झुलाती चली मैं।
झुमाती चली मैं!
हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ।

चढ़ी पेड़ महुआ,
थपाथप मचाया;
गिरी धम्म से फिर,
चढ़ी आम ऊपर,
उसे भी झकोरा,
किया कान में 'कू',
उतरकर भगी मैं,
हरे खेत पहुँची –
वहाँ, गेंहुँओं में
लहर खूब मारी।

पहर दो पहर क्या,
अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं!

खड़ी देख अलसी
लिए शीश कलसी,
मुझे खूब सूझी –
हिलाया–झुलाया
गिरी पर न कलसी!

इसी हार को पा,
हिलाई न सरसों,
झुलाई न सरसों,
हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ!

मुझे देखते ही
अरहरी लजाई,
मनाया–बनाया,
न मानी, न मानी;
उसे भी न छोड़ा –
पथिक आ रहा था,

उसी पर ढकेला;
हँसी ज़ोर से मैं,
हँसी सब दिशाएँ,
हँसे लहलहाते
हरे खेत सारे,
हँसी चमचमाती
भरी धूप प्यारी;
बसंती हवा में
हँसी सृष्टि सारी!

हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ!

कहाँ तो तय था चिराग़ाँ हरेक घर के लिए

दुष्यंत कुमार

कवि परिचय :

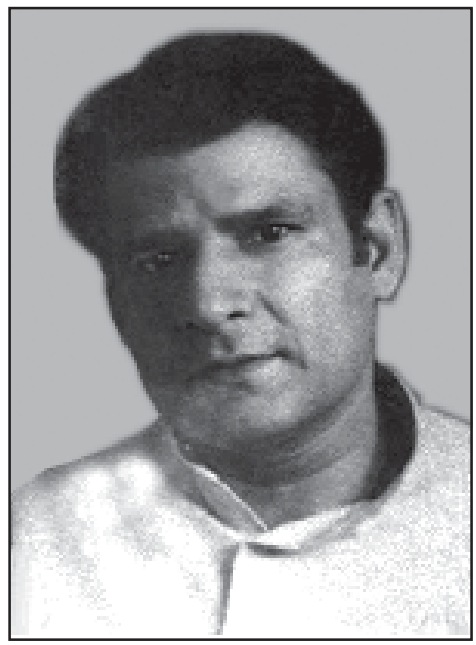

हर दौर में-हर देश में अनेकों ऐसे महान कवि और कवयित्री हुए हैं, जिन्होंने मानव को सदैव सद्मार्ग दिखाया है। उन्हीं कवियों में से एक भारतीय कवि दुष्यंत कुमार भी हैं। दुष्यंत कुमार का जन्म 1 सितंबर 1933 को, उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद के राजपुर नवादा में हुआ था। इनके पिता का नाम भगवान सहाय और माता का नाम राम किशोरी देनी था। प्रारंभिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम0 ए0 किया मुरादाबाद से बी0 एड0 करने के पश्चात् 1958 में दिल्ली आकाशवाणी से जुड़े। मध्य प्रदेश के संस्कृति विभाग में भी कुछ समय तक काम किया।

दुष्यंत कुमार एक लोकप्रिय हिंदी ग़ज़लकार थे। दुष्यंत कुमार जी का मूल नाम दुष्यंत कुमार त्यागी था। उन्होंने दसवीं कक्षा से ही कविताएं लिखना शुरू कर दिया था।

उन्होंने 'एक कंठ विषपायी', 'सूर्य का स्वागत', 'आवाज़ों के घेरे', 'जलते हुए वन का बसंत', काव्य संग्रहों तथा 'छोटे-छोटे सवाल' और 'आंगन में एक वृक्ष', 'दुसरी जिदंगी उपन्यासों की रचना की।

आपातकाल के समय उनका कवि मन क्षुब्ध हुआ तब प्रतिक्रिया स्वरूप कवि का काव्य संग्रह साये में धूप प्रकाश में आया। यह एक गज़ल संग्रह था जिससे कवि को सबसे अधित ख्याति प्राप्त हुई।

एक महान व्यक्तित्व वाले आशावादी कवि और ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार जी मात्र 42 वर्ष की आयु में 30 दिसम्बर 1975 को सदा के लिए पंचतत्व में विलीन हो गये।

कहाँ तो तय था चिराग़ाँ हरेक घर के लिए

कहाँ तो तय था चिराग़ाँ हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।

यहाँ दरख़्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।

न हो क़मीज़ तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफ़र के लिए।

ख़ुदा नहीं, न सही, आदमी का ख़्वाब सही,
कोई हसीन नज़ारा तो है नज़र के लिए।

वे मुतमइन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता,
मैं बेक़रार हूँ आवाज़ में असर के लिए।

तेरा निज़ाम है सिल दे ज़ुबान शाइर की,
ये एहतियात ज़रूरी है इस बहर के लिए।

जिएँ तो अपने बग़ीचे में गुलमोहर के तले,
भरें तो ग़ैर की गलियों में गुलमोहर के लिए।

साहित्य 'ख'

गद्य

कुटज

हजारी प्रसाद द्विवेदी

लेखक परिचय :

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म 19 अगस्त 1907 में बलिया जिले के दुबे-का-छपरा नामक गांव में हुआ। परिवार ज्योतिष विद्या के लिए प्रसिद्ध था। उनके पिता पं. अनमोल द्विवेदी संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। प्राथमिक शिक्षा और मिडिल की पढ़ाई द्विवेदी जी ने गांव के स्कूल से ही की। ज्योतिष शास्त्र में आचार्य भी किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचनाएं – हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी साहित्य, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकाश, हिंदी साहित्य का आदिकाल, नाथ संप्रदाय, सूर साहित्य, कबीर, बाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा, चारु चंद्रलेख, मृत्युंजय रवींद्र, आलोक पर्व, कुटज आदि। द्विवेदी जी शान्तिनिकेतन में हिन्दी के विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे। बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में हिन्दी के विभागाध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे। इसके बाद वह फिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रेक्टर बने। द्विवेदी जी जीवन पर्यंत साहित्य साधना में लगे रहे। हिन्दी आलोचना में आ. रामचन्द्र शुक्ल के समकक्ष इनका योगदान एवं महत्त्व है। द्विवेदी जी भारतीय साहित्य, दर्शन एवं संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। वह गंभीर चिंतक, विचारक, उच्चकोटि के समीक्षक एवं कुशल वक्ता थे। हिन्दी के श्रेष्ठ मौलिक निबंधकारों में उनका नाम उल्लेखनीय है।

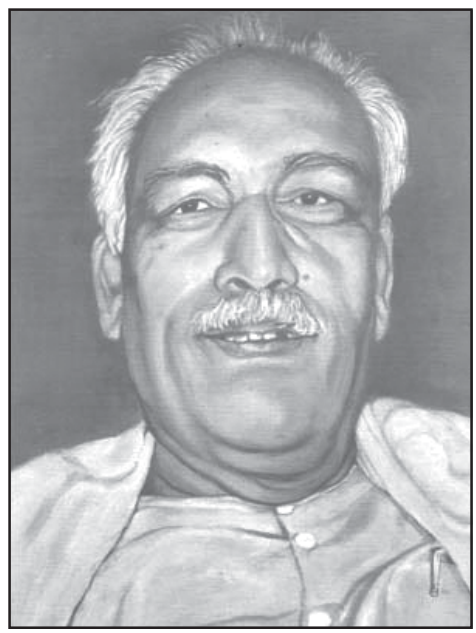

HÎF=+U ÒÛF&F =+P¶FÜFF PÎFÛÎFPáFP&F¶F ù < *विचार और वितर्क, विचार-प्रवाह, अशोक के फूल, कुटज, कल्पलता, आलोक-पर्व, साहित्य के साथी उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं। सूर-साहित्य, कबीर, हमारी साहित्यिक समस्यायें, साहित्य का मर्म आदि उनकी आलोचनात्मक रचनाएँ हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी द्विवेदी जी ने नई दृष्टि से शोध किए हैं। हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हिन्दी साहित्य का आदिकाल उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा, अनामदास का पोथा, चारू चन्द्रलेख, पुनर्नवा उनके उपन्यास हैं। प्राचीन भारत का कला विकास, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद उनकी भारतीय संस्कृति और इतिहास के संबंधित रचनाएँ हैं। उन्होंने अनेक रचनाओं का अनुवाद भी किया है।*

लखनऊ विश्वविद्यालय से उन्हें डि.लिट् की उपाधि प्राप्त हुई। 'कबीर' कृति पर उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया है। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण सम्मान से सम्मानित किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का 4 फरवरी 1979 को पक्षाघात के शिकार हुए और 19 मई 1979 को ब्रेन ट्यूमर से दिल्ली में उनका निधन हो गया।

कुटज

कहते हैं, पर्वत शोभा-निकेतन होते हैं। फिर हिमालय का तो कहना ही क्या! पूर्व और अपर समुद्र-महोदधि और रत्नाकर- दोनों को दोनों भुजाओं से थामता हुआ हिमालय पृथ्वी का 'मानदण्ड' कहा जाए तो गलत क्या है? कालिदास ने ऐसा ही कहा था। इसी के पाद-देश में यह शृंखला दूर तक लोटी हुई है, लोग इसे 'शिवालिक' कहते हैं। 'शिवालिक' का क्या अर्थ है? 'शिवालिक' शिव के जटाजूट का निचला हिस्सा तो नहीं है। लगता तो ऐसे ही है। 'सपादलक्ष' या सवा लाख की मालगुजारी वाला इलाका तो वह लगता नहीं! शिव की लटियायी जटा ही इतनी सूखी, नीरस और कठोर हो सकती। वैसे, अलकनन्दा का स्रोत यहाँ से काफी दूरी पर है, लेकिन शिव का अलक तो दूर-दूर तक छितराया ही रहता होगा। सम्पूर्ण हिमालय को देखकर ही किसी के मन में समाधिस्थ महादेव की मूर्ति स्पष्ट हुई होगी। उसी समाधिस्थ महादेव के अलक-जाल के निचले हिस्से का प्रतिनिधित्व यह गिरि-शृंखला कर रही होगी। कहीं-कहीं अज्ञात-नाम-गोत्र, झाड़-झंखाड़ और बेहया से पेड़ खड़े अवश्य दिख जाते हैं, पर और कोई हरियाली नहीं। दूब तक सूख गयी है! काली-काली चट्टानें और बीच में शुष्कता की अन्तर्निरुद्ध सत्ता का इजहार करने वाली रक्ताभ रेती है! रस कहाँ! ये जो ठिंगने-से लेकिन शानदार दरख्त गर्मी की भयंकर मार खा-खाकर और भूख-प्यास की निरन्तर चोट सह-सहकर भी जी रहे हैं, इन्हें क्या कहूँ? सिर्फ जी ही नहीं रहे हैं, हँस भी रहे है। बेहया हैं क्या? या मस्तमौला हैं? कभी-कभी जो लोग ऊपर से बेहया दिखते हैं, उनकी जड़ें काफी गहरी पैठी रहती हैं। ये भी पाषाण की छाती फाड़कर न जाने किस गह्वर से अपना भोग्य खींच लाते हैं।

शिवालिक की सूखी नीरस पहाड़ियों पर मुस्कराते हुए ये वृक्ष द्वन्द्वातीत हैं, अलमस्त हैं। मैं किसी का नाम नहीं जानता, कुल नहीं जानता, शील नहीं जानता, पर लगता हैं, ये जैसे मुझे अनादि काल से जानते हैं। इन्हीं में छोटा-सा बहुत ही ठिंगना- पेड़ है, पत्ते चौड़े भी हैं, बड़े भी हैं। फूलों से तो ऐसा लदा है कि कुछ पूछिए नहीं। अजीब सी अदा है, मुस्कराता जान पड़ता है, पूछ रहा है कि क्या तुम मुझे नहीं पहचानते? पहचानता तो हूँ; अवश्य पहचानता हूँ। लगता है, बहुत बार देख चुका हूँ, पहचानता हूँ? नाम नहीं याद आता। पर नाम ऐसा है कि जब तक रूप के पहले ही हाजिर न हो जाए, तब तक रूप की पहचान अधूरी रह जाती है। भारतीय पण्डितों का सैकड़ों बार का कचारा-निचोड़ा प्रश्न सामने आ गया - रूप मुख्य है या नाम? नाम बड़ा है या रूप? पद पहले है या पदार्थ? पदार्थ सामने है, पद नहीं सूझ रहा है। मन व्याकुल हो गया; स्मृतियों के पंख फैलाकर सुदूर अतीत के कोनों में झाँकता रहा। सोचता हूँ, इसमें व्याकुल होने की क्या बात है? नाम में क्या रखा है - ह्वाट्स देअर इन ए नेम! नाम की जरूरत ही हो तो सौ दिये जा सकते हैं। सुस्मिता, गिरिकान्ता, वनप्रभा, शुभ्रकिरीटिनी, मंदोद्धता, विजितातपा, अलकावतंसा बहुत से नाम हैं। या फिर पौरूष-व्यंजक नाम भी दिये जा सकते हैं - अकुतोभय, गिरिगौरव, कूटोल्लास, अपराजित, धरतीधकेल, पहाड़फोड़, पातालभेद। पर मन नहीं मानता। नाम इसलिए बड़ा नहीं है कि वह नाम है। वह इसलिए बड़ा होता है कि उसे सामाजिक स्वीकृति मिली होती है। रूप व्यक्ति-सत्य है, नाम समाज-सत्य। नाम उस पद को कहते हैं, जिस पर समाज की मुहर लगी होती है। आधुनिक शिक्षित लोग जिसे सोशल सैंक्शन कहा करते हैं। मेरा मन नाम के लिए व्याकुल है, समाज द्वारा स्वीकृत, इतिहास द्वारा प्रमाणित, समष्टि-मानव की चित्त-गंगा में स्नात!

इस गिरिकूट-बिहारी का नाम क्या है? मन दूर-दूर तक उड़ रहा है - देश में और काल, में - मनोरथानामगतिर्नविद्यते! अचानक याद आया अरे, यह तो कुटज है! संस्कृत साहित्य का बहुत परिचित, किन्तु कवियों द्वारा अपमानित, यह छोटा-सा शानदार वृक्ष 'कुटज' है। 'कूटज' कहा गया होता तो कदाचित् ज्यादा अच्छा होता। पर नाम इसका चाहे 'कुटज' ही हो, विरूद तो निस्सन्देह 'कुटज' होगा। गिरिकूट पर उत्पन्न होने वाले इस वृक्ष को 'कुटज' कहने में विशेष आनन्द मिलता है। बहरहाल, यह कुटज-कुटज है, मनोहर कुसुमस्तवकों से झबराया, उल्लास-लोल चारुस्मित कुटज! जी भर आया। कालिदास ने 'आषाढ़स्य प्रथमदिवसे' रामगिरि पर यक्ष को जब मेघ की अभ्यर्थना के लिए नियोजित किया तो कम्बख्त को ताजे कुटज पुष्पों की अंजलि देकर ही सन्तोष करना पड़ा। चम्पक नहीं, वकुल नहीं, नीलोत्पल नहीं, मल्लिका नहीं, अरविन्द नहीं - फकत कुटज के फुल। यह और बात है कि आज आषाढ़ का नहीं, जुलाई का पहला दिन है! मगर फर्क भी कितना है! बार-बार मन विश्वास करने को उतारू हो जाता है कि यक्ष बहाना मात्र है, कालिदास ही कभी 'शापेनास्तंगमितमहिमा! (शाप से जिनकी महिमा का अंत हो गया हो) होकर रामगिरि पहुँचे थे, अपने ही हाथों इस कुटज पुष्य का अर्घ्य देकर उन्होंने मेघ की अभ्यर्थना की थी। शिवालिक की इस अनत्युच्च पर्वत-श्रृंखला की भाँति... रामगिरि पर भी उस समय और कोई फूल नहीं मिला होगा। कुटज ने उनके सन्तप्त चित्त को सहारा दिया था — बड़भागी फूल है यह। धन्य हो कुटज, 'तुम गाढ़े के साथी' हो। उत्तर की ओर सिर उठाकर देखता हूँ, सुदूर तक ऊँची काली पर्वत-श्रृंखला छायी हुई है और एकाध सफेद बादल के बच्चे उससे लिपटे खेल रहे हैं। मैं भी इन पुष्पों का अर्घ्य उन्हें चढ़ा दूँ? पर काहे वास्ते? लेकिन बुरा भी क्या है!

कुटज के ये सुन्दर फूल बहुत बुरे तो नहीं है। जो कालिदास के काम आया हो, उसे इज्जत मिलनी चाहिए। मिली कम है। पर इज्जत तो नसीब की बात है। रहीम को मैं बड़े आदर के साथ स्मरण करता हूँ। दरिया दिल आदमी थे, पाया सो लुटाया। लेकिन दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती हैं, छिलका और गुठली फेंक देती है। सुना है, रस चूस लेने के बाद रहीम को भी फेंक दिया गया था। एक बादशाह ने आदर के साथ बुलाया, दूसरे ने फेंक दिया! हुआ ही करता है। इससे रहीम का मोल घट नहीं जाता। उनकी फक्कड़ाना मस्ती कहीं गई नहीं। अच्छे-भले कद्रदान थे। लेकिन बड़े लोगों पर भी कभी-कभी ऐसी वितृष्णा सवार होती है कि गलती कर बैठते हैं। मन खराब यहा होगा, लोगों की बेरूखी और बेकद्रदानी से मुरझा गए होंगे - ऐसी ही मन:स्थिति में उन्होंने विचारे कुटज को भी एक चपत लगा दी। झुँझलाए थे, कह दिया—

वे रहीम अब बिरछ कहँ, जिनकर छाँह गंभीर।

बागन बिच-बिच देखियत, सेंहुड़ कुटज करीर।।

गोया कुटज अदना-सा 'बिरछ' हो। छाँह ही क्या बड़ी बात है, फूल क्या कुछ भी नहीं? छाया के लिए न सही, फूल के लिए तो कुछ सम्मान होना चाहिए। मगर कभी-कभी कवियों का भी 'मूड' खराब हो जाया करता है। वे भी गलत-बयानी के शिकार हो जाया करते हैं। फिर बागों से गिरिकूट बिहारी कुटज का क्या तुक है?

कुटज अर्थात जो कुट से पैदा हुआ हो। 'कुट' घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं। कुट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त्य मुनि भी 'कुटज' कहे जाते हैं। घड़े से तो क्या उत्पन्न हुए होंगे। कोई और बात होगी। संस्कृत में 'कुटहारिका' और 'कुटकारिका' दासी को कहते हैं. क्यों कहते हैं? कुटिया या कुटीर शब्द भी कदाचित् इसी शब्द से संबद्ध है। क्या इस शब्द का अर्थ घर ही है? घर में काम-काज करने वाली दासी कुटकारिका और कुटहारिका कही ही जा सकती है। एक जरा गलत ढंग की दासी 'कुट्टनी' भी कही जाती है। संस्कृत में इसकी गलतियों को थोड़ा अधिक मुखर बनाने के लिए उसे 'कुट्टनी' कह दिया गया है। अगस्त्य मुनि भी नारदजी की तरह दासी के पुत्र थे क्या? घड़े से पैदा होने का तो कोई तुक नहीं है, न मुनि कुटज के सिलसिले में, न फूल कुटज के। फूल गमले में होते अवश्य हैं, पर कुटज तो जंगल का सैलानी है। उसे घड़े या गमले से क्या लेना-देना। शब्द विचारोत्तेजक अवश्य है। कहाँ से आया? मुझे तो इसी में सन्देह हैं कि यह आर्य भाषाओं का शब्द है भी या नहीं। एक भाषाशास्त्री किसी संस्कृत शब्द को एक से अधिक रूप में प्रचलित पाते थे तो तुरन्त उसकी कुलीनता पर शक कर बैठते थे। संस्कृत में 'कुटज' रूप भी मिलता है और 'कुटच' भी। मिलने को तो 'कूटज' भी मिल जाता है। तो यह शब्द किस जाति का है? आर्य जाति का तो नहीं जान पड़ता। सिलवाँ लेवी कह गए है कि संस्कृत भाषा में फूलों, वृक्षों और खेती-बागबानी के अधिकांश शब्द आग्नेय भाषा-परिवार के हैं। यह भी वहीं का तो नहीं है? एक जमाना था जब आस्ट्रेलिया और एशिया महाद्वीप मिले हुए थे, फिर कोई भयंकर प्राकृतिक विस्फोट हुआ और ये दोनों अलग हो गये। उन्नीसवीं शताब्दी के भाषा-विज्ञान पण्डितों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आस्ट्रेलिया के सुदूर जंगलों में बसी जातियों की भाषा एशिया में बसी हुई कुछ जातियों की भाषा से सम्बद्ध है। भारत की अनेक जातियाँ वह भाषा बोलती है, जिनमें सन्थाल, मुण्डा आदि भी शामिल है। शुरु-शुरु में इस भाषा का नाम आस्ट्रो-एशियाटिक दिया गया था। दक्षिण-पूर्व या अग्निकोण की भाषा होने के कारण इन्हें आग्नेय परिवार भी कहा जाने लगा। अब हम लोग भारतीय जनता के वर्ग-विशेष को ध्यान में रखकर और पुराने साहित्य का स्मरण करके इसे कोल-परिवार की भाषा कहने लगे है। पण्डितों ने बताया है कि संस्कृत भाषा के अनेक शब्द, जो अब भारतीय संस्कृत के अविच्छेद्य अंग बन गए हैं, इसी श्रेणी की भाषा के हैं। कमल, कुड्मल, कम्बु, कम्बल, ताम्बुल आदि शब्द ऐसे ही बताए जाते हैं। पेड़-पौधों, खेती के उपकरणों और औजारों के नाम भी ऐसे ही हैं। 'कुटज' भी हो तो क्या आश्चर्य? संस्कृत भाषा ने शब्दों के संग्रह में कभी छूत नहीं मानी। न जाने किस-किस नस्ल के कितने शब्द उसमें आकर अपने बन गए है। पण्डित लोग उसकी छान-बीन करके हैरान होते है। संस्कृत सर्वग्रासी भाषा है।

ये जो मेरे सामने कुटज का लहराता पौधा खड़ा है, वह नाम और रूप दोनों में अपनी अपराजेय जीवनी-शक्ति की घोषणा कर रहा है। इसीलिए यह इतना आकर्षक है। नाम है कि हजारों वर्षों से जीता चला आ रहा है। कितने नाम आये और गये। दुनिया उनको भूल गयी, वे दुनिया को भूल गये। मगर कुटज है कि संस्कृत की निरन्तर स्फीयमान शब्दराशि में जो जम के बैठा सो बैठा ही है। और रूप की तो बात ही क्या है। बलिहारी है इस मादक शोभा की। चारों ओर कुपित यमराज के दारुण नि:श्वास के समान धधकती लू में यह हरा भी है और भरा भी है, दुर्जन के चित्त से भी अधिक कठोर पाषाण की कारा में रुद्ध अज्ञात

जलस्रोत से बरबस रस खींचकर सरस बना हुआ है और मूर्ख के मस्तिष्क से भी अधिक सूने गिरि कान्तार में भी ऐसा मस्त बना है कि ईर्ष्या होती है। कितनी कठिन जीवनी-शक्ति है। प्राण ही प्राण को पुलकित करता है जीवनी-शक्ति ही जीवनी-शक्ति को प्रेरणा देती है। दूर पर्वतराज हिमालय की हिमाच्छादित चोटियाँ है, वहां कहीं भगवान् महादेव समाधि लगाकर बैठे होंगे, नीचे सपाट पथरीली जमीन का मैदान, कहीं-कहीं पर्वतनन्दिनी सरिताएँ आगे बढ़ने का रास्ता खोज रही होगी-बीच में यह चट्टानों की ऊबड़-खाबड़ जटाभूमि है-सूखी, नीरस, कठोर। यही आसन मारकर बैठे हैं मेरे चिरपरिचित दोस्त कुटज। एकबार अपने झबरीले मूर्धा को हिलाकर समाधिनिष्ठ महादेव को पुष्पस्तबक का उपहार चढ़ा देते हैं और एक बार नीचे की ओर अपनी पाताल भेदी जड़ों को दबाकर गिरिनन्दिनी सरिताओं को संकेत से बता देते है कि रस का स्रोत कहाँ है। जीना चाहते हो ? कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो; वायुमण्डल को चूसकर, झंझा-तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो; आकाश को चूसकर, अवकाश की लहरों में झूमकर, उल्लास खींच लो। कुटज का यही उपदेश है—

भित्त्वा पाषाणपिठरं छित्त्वा प्राभज्जनीं व्यथाम्
पीत्वा पातालपानीयं कुटजश्चुम्बते नभः।

दुरन्त जीवन-शक्ति है। कठिन उपदेश है। जीना भी एक कला है। लेकिन कला ही नहीं, तपस्या है। जियो तो प्राण ढाल दो जिन्दगी में, मन ढाल दो जीवनी रस के उपकरणों में! ठीक है। लेकिन क्यों ? क्या जीने के लिए जीना ही बड़ी बात है ? सारा संसार अपने मतलब के लिए ही तो जी रहा है। याज्ञवल्क्य बहुत बड़े ब्रह्मवादी ऋषि थे। उन्होंने अपनी पत्नी को विचित्र भाव से समझाने की कोशिश की कि सब कुछ स्वार्थ के लिए है। पुत्र के लिए पुत्र प्रिय नहीं होता, पत्नी के लिए पत्नी प्रिया नहीं होती — सब अपने मतलब के लिए प्रिय होते हैं — 'आत्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं भवति'। विचित्र नहीं है यह तर्क ? संसार मे जहाँ कहीं प्रेम है, सब मतलब के लिए। सुना है, पश्चिम के हॉब्स हेल्वेशियस जैसे विचारकों ने भी ऐसी ही बात कही है। सुन के हैरानी होती है। दुनिया में त्याग नहीं है, प्रेम नहीं है, परार्थ नहीं है, परमार्थ नहीं है — केवल प्रचण्ड स्वार्थ; भीतर की जिजीविषा — जीते रहने की प्रचण्ड इच्छा ही अगर बड़ी बात हो तो फिर यह सारी बड़ी-बड़ी बोलियाँ, जिनके बल पर दल बनाये जाते हैं, शत्रु मर्दन का अभिनय किया जाता है, देशोद्धार का नारा लगाया जाता है, साहित्य और कला की महिमा गायी जाती है, झूठ हैं। इसके द्वारा कोई-न-कोई अपना बड़ा स्वार्थ सिद्ध करता है। लेकिन अन्तरतम से कोई कह रहा है, ऐसा सोचना गलत ढंग से सोचना है। स्वार्थ से भी बड़ी कोई-न-कोई बात अवश्य है, जिजीविषा से भी प्रचण्ड कोई-न-कोई शक्ति अवश्य है। क्या है ?

याज्ञवल्क्य ने जो बात धक्कामार ढंग से कह दी थी वह अन्तिम नहीं थी। वे 'आत्मनः' का अर्थ कुछ और बड़ा करना चाहते थे। व्यक्ति की 'आत्मा' केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं है, वह व्यापक है। अपने में सब और सब में आप-इस प्रकार की एक समष्टि-बुद्धि जब तक नहीं आती तब तक पूर्ण सुख का आनन्द भी नहीं मिलता। अपने-आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर जब तक 'सर्व' के लिए निछावर नहीं कर दिया जाता तब तक 'स्वार्थ' खण्ड- सत्य है, वह मोह को बढ़ावा देता है, तृष्णा को उत्पन्न करता है और

मनुष्य को दंडनीय-कृपण-बना देता है। कार्पण्य दोष से जिसका स्वभाव उपहत हो गया है, उसकी दृष्टि म्लान हो जाती है। वह स्पष्ट नहीं देख पाता। वह स्वार्थ भी नहीं समझ पाता, परमार्थ तो दूर की बात है।

कुटज क्या केवल जी रहा है? वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अपमानित करने के लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता। आत्मोन्नति हेतु नीलम नहीं धारण करता, अँगूठियों की लड़ी नहीं पहनता, दाँत नहीं निपोरता, बगलें नहीं झाँकता। जीता है और शान से जीता है-काहे वास्ते, किस उद्देश्य से! कोई नहीं जानता। मगर कुछ बड़ी बात है। स्वार्थ के दायरे से बाहर की बात है। भीष्म पितामह की भाँति अवधूत की भाषा में कह रहा है: 'चाहे सुख हो या दुख, प्रिय हो या अप्रिय, जो मिल जाय उसे शान के साथ, हृदय से बिल्कुल अपराजित होकर, सोल्लास ग्रहण करो। हार मत मानो।'

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्
प्राप्तं प्राप्तमुपासीतं हृदयेनपराजितः।

शान्तिपर्व 25,1,26

हृदयेनपराजितः! कितना विशाल वह हृदय होगा, जो सुख से, दुःख से, प्रिय से, अप्रिय से विचलित न होता होगा! कुटज को देखकर रोमांच हो जाता है। कहाँ मिली है यह अकुतोभया वृत्ति, अपराजित स्वभाव, अविचल जीवन-दृष्टि!

जो समझता है कि वह दूसरों का अपकार कर रहा है वह अबोध है, जो समझता है कि दूसरे उसका उपकार कर रहे है, वह भी बुद्धिहीन है। कौन किसका अपकार करता है, कौन किसका उपकार कर रहा है? मनुष्य जी रहा है, केवल जी रहा; अपनी इच्छा से नहीं, इतिहास-विधाता को योजना के अनुसार। किसी को उससे सुख मिल जाये, बहुत अच्छी बात है, नहीं मिल सका, कोई बात नहीं, परन्तु उसे अभिमान नहीं होना चाहिए। सुख पहुँचाने का अभिमान यदि गलत है, तो दुःख पहुँचाने का अभिमान तो नितान्त गलत है।

दुख और सुख तो मन के विकल्प हैं। सुखी वह है जिसका मन वश में है, दुःखी वह है जिसका मन परवश है। परवश होने का अर्थ है खुशामद करना, दाँत निपोरना, चाटुकारिता, हाँ-हजूरी। जिसका मन अपने वश में नहीं वही दूसरे के मन का छन्दावर्त्तन करता है, अपने को छिपाने के लिए मिथ्या आडम्बर रचता है, दूसरों को फँसाने के लिए जाल बिछाता है। कुटज इन सब मिथ्याचारों से मुक्त है। वह वशी है। वह वैरागी है। राजा जनक की तरह संसार में रहकर, सम्पूर्ण भोगों को भोगकर भी उनसे मुक्त है। जनक की ही भाँति वह घोषणा करता है : 'मैं स्वार्थ के लिए अपने मन को सदा दूसरे के मन में घुसाता नहीं फिरता, इसलिए मैं मन को जीत सका हूँ, उसे वश में कर सका हूँ :'

नाहमात्मार्थमिच्छामि मनोनित्यं मनोन्तरे।
मनो में निर्जितं तत्मात् वशे तिष्ठति सर्वदा।

कुटज अपने मन पर सवारी करता है, मन को अपने पर सवार नहीं होने देता। मनस्वी मित्र, तुम धन्य हो।

भाग्य रेखा

भीष्म साहनी

लेखक परिचय :

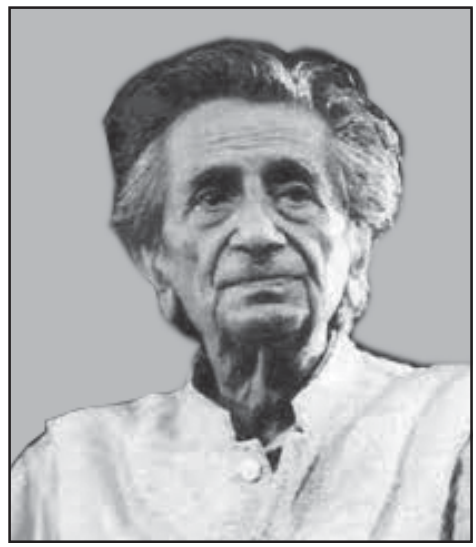

आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त 1915 में रावलपिंडी (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था। उनके पिता का नाम 'श्री हरवंशलाल साहनी' व माता का नाम 'श्रीमती लक्ष्मी देवी' था। बता दें कि मशहूर अभिनेता रहे 'बलराज साहनी' उनके बड़े भाई थे। बड़े भाई के साथ अभिनेता और निर्देशक के रूप में उन्होंने काम किया। इनकी तमस रचना पर गोविन्द निहलानी ने टेलीफिल्म भी बनाई जो काफी चर्चित रही। मध्यवर्गीय परिवार में जन्में भीष्म साहनी का आरंभिक बचपन रावलपिंडी में ही बीता। इसके पश्चात सन् 1958 में पंजाब विश्वविद्यालय से पीएचडी की उपाधि हासिल की। भीष्म साहनी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हिन्दी व संस्कृत में हुई। उन्होंने स्कूल में उर्दू व अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त करने के बाद 1937 में 'गवर्नमेंट कॉलेज', लाहौर से अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. किया। भीष्म साहनी ने 1965 से 1967 तक "नई कहानियाँ" का सम्पादन किया। साथ ही वे प्रगतिशील लेखक संघ तथा एफ्रो एशियाई लेखक संघ से सम्बद्ध रहे, उनकी पत्रिका लोटस से भी ये जुड़े रहे। ये 'सहमत' नामक नाट्यसंस्थापक और अध्यक्ष थे, जो अंतर – सांस्कृतिक संगठन को बढ़ावा देने वाला संगठन है, जिसकी स्थापना थियेटर कलाकार सफदर हाशमी की याद में की गई। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं;

HÑFÎÜFFÕF: झरोखे, तमस, बसन्ती, मायादास की माडी, कुन्तो, नीलू निलिमा निलोफर;

=+ÙFÎFU ÕF;FÙ: मेरी प्रिय कहानियां, भाग्यरेखा, वांगचू, निशाचर;

ÎFF©=+: हनूश, माधवी, कबीरा खड़ा बजार में, मुआवज़े;

EF¶ÛF=+»FF: बलराज माय ब्रदर;

ÙFFáF=+»FF: गुलेल का खेल।

भीष्म साहनी की मृत्यु 11 जुलाई 2003 को दिल्ली में हुई थी।

भाग्य रेखा

कनाट सरकस के बाग में जहां नई दिल्ली की सब सड़कें मिलती हैं, जहां शाम को रसिक और दोपहर को बेरोज़गार आ बैठते हैं, तीन आदमी, खड़ी धूप से बचने के लिए, छांह में बैठे, बीड़ियां सुलगाए बातें कर रहे हैं और उनसे ज़रा हटकर, दाईं ओर, एक आदमी खाकी-से कपड़े पहने, अपने जूतों का सिरहाना बनाए, घास पर लेटा हुआ मुतवातर खांस रहा है। पहली बार जब वह खांसा तो मुझे बुरा लगा। चालीस-पैंतालीस वर्ष का कुरूप-सा आदमी, सफ़ेद छोटे-छोटे बाल, काला, झाइयों-भरा चेहरा, लम्बे-लम्बे दांत और कन्धे आगे को झुके हुए, खांसता जाता और पास ही घास पर थूकता जाता। मुझसे न रहा गया।

मैंने कहा, 'सुना है, विलायत में सरकार ने जगह-जगह पीकदान लगा रखे हैं, ताकि लोगों को घास-पौधों पर न थूकना पड़े'।

उसने मेरी ओर निगाह उठाई, पल-भर घूरा, फिर बोला, 'तो साहब, वहां लोगों को ऐसी खांसी भी न आती होगी'।

फिर खांसा, और मुस्कराता हुआ बोला, 'बड़ी नामुराद बीमारी है, इसमें आदमी घुलता रहता है, मरता नहीं'। मैंने सुनी-अनसुनी करके, जेब में से अख़बार निकाला और देखने लगा। पर कुछ देर बाद कनखियों से देखा, तो वह मुझ पर टकटकी बांधे मुस्करा रहा था।

मैंने अख़बार छोड़ दिया, 'क्या धन्धा करते हो?'

'जब धन्धा करते थे तो खांसी भी यूं तंग न किया करती थी'।

'क्या करते थे?'

उस आदमी ने अपने दोनों हाथों की हथेलियां मेरे सामने खोल दीं। मैंने देखा, उसके दाएं हाथ के बीच की तीन उंगलियां कटी थीं। वह बोला, 'मशीन से कट गई। अब मैं नई उंगलियां कहां से लाऊं? जहां जाओ, मालिक पूरी दस उंगलियाँ मांगता है,'

कहकर हंसने लगा। 'पहले कहां काम करते थे?'

'कालका वर्कशॉप में।'

हम दोनों फिर चुप हो गए। उसकी रामकहानी सुनने को मेरा जी नहीं चाहता था, बहुत-सी रामकहानियां सुन चुका था। थोड़ी देर तक वह मेरी तरफ़ देखता रहा, फिर छाती पर हाथ रखे लेट गया। मैं भी लेटकर अख़बार देखने लगा, मगर थका हुआ था, इसलिए मैं जल्दी ही सो गया। जब मेरी नींद टूटी तो मेरे नज़दीक धीमा-धीमा वार्तालाप चल रहा था, 'यहां पर भी तिकोन बनती है, जहां आयु की रेखा और दिल की रेखा मिलती हैं, देखा? तुम्हें कहीं से धन मिलनेवाला है।'

मैंने आंखें खोलीं। वही दमे का रोगी घास पर बैठा, उंगलियां कटे हाथ की हथेली एक ज्योतिषी के सामने फैलाए अपनी क़िस्मत पूछ रहा था।

'लाग-लपेटवाली बात नहीं करो, जो हाथ में लिखा है, वही पढ़ो।'

'इधर अंगूठे के नीचे भी तिकोन बनती है। तेरा माथा बहुत साफ़ है, धन जरूर मिलेगा।'

'कब?'

'जल्दी ही।'

देखते-ही-देखते उसने ज्योतिषी के गाल पर एक थप्पड़ दे मारा। ज्योतिषी बिलबिला गया।

'कब धन मिलेगा? धन मिलेगा! तीन साल से भाई के टुकड़ों पर पड़ा हूं, कहता है, धन मिलेगा!'

ज्योतिषी अपना पोथी-पत्रा उठाकर जाने लगा, मगर यजमान ने कलाई खींचकर बिठा लिया, 'मीठी-मीठी बातें तो बता दीं, अब जो लिखा है, वह बता, मैं कुछ नहीं कहूंगा।'

ज्योतिषी कोई बीस-बाईस वर्ष का युवक था। काला चेहरा, सफ़ेद कुर्ता और पाजामा जो जगह-जगह से सिला हुआ था। बातचीत के ढंग से बंगाली जान पड़ता था। पहले तो घबराया फिर हथेली पर यजमान का हाथ लेकर रेखाओं की मूकभाषा पढ़ता रहा। फिर धीरे से बोला, 'तेरे भाग्य-रेखा नहीं हैं।'

यजमान सुनकर हंस पड़ा, 'ऐसा कह न साले, छिपाता क्यों है? भाग्य-रेखा कहां होती है?'

'इधर, यहां से उस उंगली तक जाती है।'

'भाग्य-रेखा नहीं है तो धन कहां से मिलेगा?'

'धन ज़रूर मिलेगा। तेरी नहीं तो तेरी घरवाली की रेखा अच्छी होगी। उसका भाग्य तुझे मिलेगा। ऐसे भी होता है'।

'ठीक है, उसी के भाग्य पर तो अब तक जी रहा हूं। वही तो चार बच्चे छोड़कर अपनी राह चली गई है।'

ज्योतिषी चुप हो गया। दोनों एक-दूसरे के मुंह की ओर देखने लगे। फिर यजमान ने अपना हाथ खींच लिया, और ज्योतिषी को बोला, 'तू अपना हाथ दिखा।'

ज्योतिषी सकुचाया, मगर उससे छुटकारा पाने का कोई साधन न देखकर, अपनी हथेली उसके सामने खोल दी, 'यह तेरी भाग्य-रेखा है?'

'हां।'

'तेरा भाग्य तो बहुत अच्छा है। कितने बंगले हैं तेरे?'

ज्योतिषी ने अपनी हथेली बन्द कर ली और फिर पोथी-पत्रा सहेजने लगा। दमे के रोगी ने पूछा, 'बैठ जा इधर। कब से यह धन्धा करने लगा है?

ज्योतिषी चुप।

दमे के रोगी ने पूछा, 'कहां से आया है?'

'पूर्वी बंगाल से।'

'शरणार्थी है?'

'हाँ'।

'पहले भी यही धन्धा या?'

ज्योतिषी फिर चुप। तनाव कुछ ढीला पड़ने लगा।

यजमान धीरे से बोला, 'हमसे क्या मिलेगा! जा, किसी मोटरवाले का हाथ देख।'

ज्योतिषी ने सिर हिलाया, 'वह कहां दिखाते हैं! जो दो पैसे मिलते हैं, तुम्हीं जैसों से'।

सूर्य सामने पेड़ के पीछे ढल गया था। इतने में पांच-सात चपरासी सामने से आए और पेड़ के नीचे बैठ गए, 'जा, उनका हाथ देख। उनकी जेबें ख़ाली न होंगी।'

मगर ज्योतिषी सहमा-सा बैठा रहा। एकाएक बाग़ की आबादी बढ़ने लगी। नीले कुर्ते-पाजामे पहने, लोगों की कई टोलियां, एक-एक करके आईं, और पास के फ़ुटपाथ पर बैठने लगीं। फिर एक नीली-सी लारी झपटती हुई आई, और बाग़ के ऐन सामने रुक गई। उसमें से पन्द्रह-बीस लट्ठधारी पुलिसवाले उतरे और सड़क के पार एक कतार में खड़े हो गए। बाग़ की हवा में तनाव आने लगा। राहगीर पुलिस को देखकर रुकने लगे। पेड़ों के तले भी कुछ मज़दूर आ जुटे।

'लोग किसलिए जमा हो रहे हैं?' ज्योतिषी ने यजमान से पूछा।

'तुम नहीं जानते? आज मई दिवस है, मज़दूरों का दिन है।'

फिर यजमान गम्भीर हो गया, 'आज के दिन मज़दूरों पर गोली चली थी।'

मज़दूरों की तादाद बढ़ती ही गई और मज़दूरों के साथ खोमचेवाले, मलाई, बरफ, मूंगफली, चाट, चबेनेवाले भी आन पहुंचे, और घूम-घूमकर सौदा बेचने लगे। इतने में शहर की ओर से शोर सुनाई दिया। बाग़ से लोग दौड़-दौड़कर फ़ुटपाथ पर जा खड़े हुए। सड़क के पार सिपाही लाठियां संभाले तनकर खड़े हो गए। जुलुस आ रहा था। नारे गूंज रहे थे। हवा में तनाव बढ़ रहा था। फ़ुटपाथ पर खड़े लोग भी नारे लगाने लगे।

पुलिस की एक और लारी आ लगी, और लट्ठधारी सिपाही कूद-कूदकर उतरे। 'आज लाठी चलेगी।' यजमान ने कहा। पर किसी ने कोई उत्तर न दिया।

सड़क के दोनों ओर भीड़ जम गई। सवारियों का आना-जाना रुक गया। शहरवाली सड़क पर से एक जुलूस बाग़ की तरफ़ बढ़ता हुआ नजर आया। फ़ुटपाथ वाले भी उसमें जा-जाकर मिलने लगे। इतने में

दो और जुलूस अलग-अलग दिशा से बाग़ की तरफ़ आने लगे। भीड़ जोश में आने लगी। मज़दूर बाग के सामने आठ-आठ की लाइन बनाकर खड़े होने लगे। नारे आसमान तक गूंजने लगे, और लोगों की तादाद हज़ारों तक जा लगी। सारे शहर की धड़कन मानो इसी भीड़ में पुंजीभूत हो गई हो! कई जुलूस मिलकर एक हो गए। मज़दूरों ने झंडे उठाए और आगे बढ़ने लगे। पुलिसवालों ने लाठियां उठा लीं और साथ-साथ जाने लगे।

फिर वह भीमाकार जुलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। कनाट सरकस की मालदार, धुली-पुती दीवारों के सामने वह अनोखा लग रहा था, जैसे नीले आकाश में सहमा अंधियारे बादल करवटें लेने लगें! धीरे-धीरे चलता हुआ जुलूस उस ओर घूम गया जिस तरफ़ से पुलिस की लारियां आई थीं। ज्योतिषी अपनी उत्सकुता में बेंच के ऊपर आ खड़ा हुआ था। दमे का रोगी, अब भी अपनी जगह पर बैठा, एकटक जुलूस को देख रहा था।

दूर होकर नारों की गूंज मंदतर पड़ने लगी। दर्शकों की भीड़ बिखर गई। जो लोग जुलूस के संग नहीं गए, वे अपने घरों की ओर रवाना हुए। बाग़ पर धीरे-धीरे दुपहर जैसी ही निस्तब्धता छाने लगी। इतने में एक आदमी, जो बाग़ के आर-पार तेज़ी से भागता हुआ जुलूस की ओर आ रहा था, सामने से गुज़रा। दुबला-सा आदमी, मैली गंजी और जांघिया पहने हुए। यजमान ने उसे रोक लिया, 'क्यों दोस्त, ज़रा इधर तो आओ'।

'क्या है?'

'यह जुलूस कहां जाएगा?'

'पता नहीं। सुनते हैं, अजमेरी गेट, दिल्ली दरवाज़ा होता हुआ लाल क़िले जाएगा, वहां जलसा होगा'।

'वहां तक पहुंचेगा भी? यह लट्ठधारी जो साथ जा रहे हैं, जो रास्ते में गड़बड़ हो गई तो?'

'अरे, गड़बड़ तो होती ही रहती है, तो जुलूस रुकेगा थोड़े ही', कहता हुआ वह आगे बढ़ गया।

दमे का रोगी जुलूस के ओझल हो जाने तक, टकटकी बांधे उसे देखता रहा। फिर ज्योतिषी के कन्धे को थपथपाता हुआ, उसकी आंखों में आंखें डालकर मुस्कराने लगा। ज्योतिषी फिर कुछ सकुचाया, घबराया।

यजमान बोला, 'देखा साले?'

'हां, देखा है'।

अब भी यजमान की आंखें जुलूस की दिशा में अटकी हुई थीं। फिर मुस्कराते हुए, अपनी उंगलियां-कटी हथेली ज्योतिषी के सामने खोल दी, 'फिर देख हथेली, साले, तू कैसे कहता है कि भाग्य रेखा कमज़ोर है?'

और फिर बाएं हाथ से छाती को थामे ज़ोर-ज़ोर से खांसने लगा।

भेड़ें और भेड़िये

हरिशंकर परसाई

लेखक परिचय :

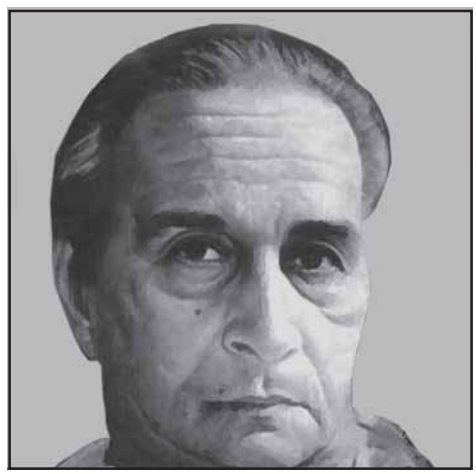

हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य विधा को नया रूप और नया आयाम देने वाले हरिशंकर परसाई जी का जन्म 22 अगस्त 1924 ई० को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी गांव में हुआ था। गाँव से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे नागपुर चले आये थे। मात्र अठारह वर्ष की उम्र में हरिशंकर परसाई ने 'जंगल विभाग' में नौकरी की। पिता की बीमारी के कारण परिवार की आजीविका के लिए इन्हें नौकरी करनी पड़ी। नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. करने के बाद उन्होंने अनेक स्थानों पर अध्यापन कार्य किया। बाद में इन्होंने नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन को अपना लिया। जबलपुर में रहते हुए 'वसुधा' नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन एवं सम्पादन शुरु किया। आर्थिक हानि उठाने के कारण उन्हें 'वसुधा' का प्रकाशन बंद करना पड़ा।

परसाई जी की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं — हँसते हैं रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे, उनके कहानीसंग्रह हैं। रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज उनके उपन्यास हैं। तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेइमानी की परत, पगडंडियों का जमाना, शिकायत मुझे भी है, निठल्ले की डायरी उनके निबंध संग्रह हैं। वैष्णव को फिसलन, तिरछी रेखाएँ, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग श्रद्धा का दौर, प्रेमचंद के फटे जूते, माटी कहे कुम्हार से, आवारा भीड़ के खतरे, सदाचार का ताबीज, तुलसीदास चंदन घिसैं आदि उनके व्यंग्य लेख हैं।

विकलांग श्रद्धा का दौर के लिए उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सहज एवं सरल भाषा में समाज की विसंगतियों और कुरीतियों पर हास्य व्यंग्य के माध्यम से चुटीला प्रहार परसाई जी की अन्यतम विशेषता है। वे खण्डवा में छः माह तक बतौर अध्यापक भी नियुक्त हुए थे। तत्पश्चात् स्वतंत्र लेखन प्रारंभ किया। इसी क्रम में उन्होंने जबलपुर से साहित्यिक पत्रिका वसुधा का प्रकाशन भी प्रारंभ किया था। हरिशंकर परसाई की गणना हिन्दी के श्रेष्ठ व्यंग्य रचना कारों में होती है। अवसरवादिता , चुनाव व्यवस्था, राजनीतिक दांवपेज, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, धर्म, शिक्षा, सबसे आगे निकलने की होड़, भाई-भतीजावाद आदि उनके प्रमुख विषय रहे है। हरिशंकर परसाई जी की पहली रचना "स्वर्ग से नरक जहाँ तक" है, जो कि मई, 1948 में प्रहरी में प्रकाशित हुई थी। ÒÛF&F Þ˜FÎFFJ - विकलांग श्रद्धा का दौर, दो नाक वाले लोग, आध्यात्मिक पागलों का मिशन, क्रांतिकारी की कथा, पवित्रता का दौरा। 'विकलांग श्रद्धा का दौर' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 10 अगस्त 1995 को जबलपुर में परसाई जी की मृत्यु हो गई।

भेड़ें और भेड़िये

एक बार एक वन के पशुओं को ऐसा लगा कि वे सभ्यता के उस स्तर पर पहुँच गए हैं, जहाँ उन्हें एक अच्छी शासन-व्यवस्था अपनानी चाहिए। और, एक मत से यह तय हो गया कि वन-प्रदेश में प्रजातंत्र की स्थापना हो। पशु-समाज में इस 'क्रांतिकारी' परिवर्तन से हर्ष की लहर दौड़ गई कि सुख-समृद्धि और सुरक्षा का स्वर्ण-युग अब आया और वह आया।

जिन वन-प्रदेश में हमारी कहानी ने चरण धरे हैं, उसमें भेंड़ें बहुत थीं-निहायत नेक, ईमानदार, कोमल, विनयी, दयालु, निर्दोष पशु जो घास तक को फूँक-फूँककर खाता है।

भेड़ों ने सोचा कि अब हमारा भय दूर हो जाएगा। हम अपने प्रतिनिधियों से कानून बनवाएँगे कि जीवधारी किसी को न सताए, न मारे। सब जिएँ और जीने दें। शांति, स्नेह, बन्धुत्व और सहयोग पर समाज आधारित हो।

इधर, भेड़ियों ने सोचा कि हमारा अब संकटकाल आया। भेड़ों की संख्या इतनी अधिक है कि पंचायत में उनका ही बहुमत होगा और अगर उन्होंने कानून बना दिया कि कोई पशु किसी को न मारे, तो हम खाएँगे क्या ? क्या हमें घास चरना सीखना पड़ेगा ?

ज्यों-ज्यों चुनाव समीप आता, भेड़ों का उल्लास बढ़ता जाता।

ज्यों-ज्यों चुनाव समीप आता, भेड़ियों का दिल बैठता जाता।

एक दिन बूढ़े सियार ने भेड़िये से कहा, ''मालिक, आजकाल आप बड़े उदास रहते हैं।''

हर भेड़िये के आसपास दो-चार सियार रहते ही हैं। जब भेड़िया अपना शिकार खा लेता है, तब ये सियार हड्डियों में लगे माँस को कुतरकर खाते हैं, और हड्डियाँ चूसते रहते हैं। ये भेड़िये के आसपास दुम हिलाते चलते हैं, उसकी सेवा करते हैं और मौके-बेमौके ''हुआँ-हुआँ'' चिल्लाकर उसकी जय बोलते हैं।

तो बूढ़े सियार ने बड़ी गंभीरता से पुछा, ''महाराज, आपके मुखचन्द्र पर चिन्ता के मेघ क्यों छाए हैं ?'' वह सियार कुछ कविता भी करना जानता होगा या शायद दूसरे की उक्ति को अपना बनाकर कहता हो।

खैर, भेड़िये ने कहा, ''तुझे क्या मालूम नहीं है कि वन-प्रदेश में नई सरकार बनने वाली है ? हमारा राज तो अब गया।''

सियार ने दाँत निपोर कर कहा, ''हम क्या जानें महाराज ! हमारे तो आप ही 'माई-बाप' है। हम तो कोई और सरकार नहीं जानते। आपका दिया खाते हैं, आपके गुन गाते हैं।''

भेड़िये ने कहा, ''मगर अब समय ऐसा आ रहा है कि सूखी हड्डियाँ भी चबाने को नहीं मिलेंगी।''

सियार सब जानता था, मगर जानकर भी न जानने का नाटक करना न आता, तो सियार शेर न हो गया होता !

आखिर भेड़िये ने वन-प्रदेश की पंचायत के चुनाव की बात बूढ़े सियार को समझाई और बड़े गिरे मन से कहा, ''चुनाव अब पास आता जा रहा है। अब यहाँ से भागने के सिवा कोई चारा नहीं। पर जाएँ भी कहाँ?''

सियार ने कहा, ''मालिक, सरकार में भरती हो जाइए।''

भेड़िये ने कहा, ''अरे, वहाँ भी शेर और रीछ को तो ले लेते हैं, पर हम इतने बदनाम हैं कि हमें वहां भी कोई नहीं पूछता।''

''तो'', सियार ने खूब सोचकर कहा, ''अजायबघकर में चले जाइए।''

भेड़िये ने कहा, ''अरे, वहाँ भी जगह नहीं है, सुना है। वहाँ तो आदमी रखे जाने लगे है।''

बूढ़ा सियार अब ध्यानमग्न हो गया। उसने एक आँख बंद की, नीचे के होंठ को ऊपर के दाँत से दबाया और एकटक आकाश की तरफ देखने लगा जैसे विश्वात्मा से कनेक्शन जोड़ रहा हो। फिर बोला, ''बस सब समझ में आ गया। मालिक, अगर पँचायत में आप भेड़िया जाति का बहुमत हो जाए तो?''

भेड़िया चिढ़कर बोला, ''कहां की आसमानी बातें करता है?'' अरे हमारी जाति कुल दस फ़ीसदी है और भेड़ें तथा अन्य छोटे पशु नब्बे फ़ीसदी । भला वे हमें कोई को चुनेंगे। अरे, कहीं जिन्दगी अपने को मौत के हाथ सौंप सकती है? मगर हाँ, ऐसा हो सकता तो क्या बात थी।''

बूढ़ा सियार बोला, ''आप खिन्न मत होइए सरकार! एक दिन का समय दीजिए। कल तक कोई योजना बन ही जाएगी। मगर एक बात है। आपको मेरे कहे अनुसार कार्य करना पड़ेगा।''

मुसीबत में फँसे भेड़िये ने आख़िर सियार को अपना गुरु माना और आज्ञापालन की शपथ ली।

दूसरे दिन बूढ़ा सियार अपने तीन सियारों को लेकर आया। उनमें से उसने एक को पीले रंग में रँग दिया था, दूसरे को नीले में और तीसर को हरे में।

भेड़िये ने देखा और पूछा, ''अरे ये कौन हैं?''

बूढ़ा सियार बोला, ''ये भी सियार हैं सरकार, मगर रंगे सियार हैं। आपकी सेवा करेंगे। आपके चुनाव का प्रचार करेंगे।''

भेड़िये ने शंका की, ''मगर इनकी बात मानेगा कौन? ये तो वैसे ही छल-कपट के लिए बदनाम है।''

सियार ने भेड़िये का हाथ चूमकर कहा, ''बड़े भोले हैं आप सरकार! अरे मालिक, रूप-रंग बदल देने से तो सुना है आदमी तक बदल जाते हैं। फिर ये तो सियार हैं।''

और तब, बूढ़े सियार ने भेड़िये का भी रूप बदला। मस्तक पर तिलक लगाया, गले में कंठी पहनाई और मुँह में घास के तिनके खोंस दिए। बोला, ''अब आप पूरे संत हो गए। अब भेड़ों की सभा में चलेंगे। मगर तीन बातों का ख्याल रखना-अपनी हिंसक आँखों को ऊपर मत उठाना, हमेशा ज़मीन की ओर के देखना और कुछ बोलना मत, नहीं तो सब पोल खुल जाएगी और वहाँ वहुत-सी भेड़ें आएँगी, सुंदर-सुंदर, मुलायम-मुलायम, तो कहीं किसी को तोड़ मत खाना।''

भेड़िये ने पूछा ''लेकिन ये रँगे सियार क्या करेंगे ? ये किस काम आएँगे ?''

बूढ़ा सियार बोला, ''ये बड़े काम के हैं। आपका सारा प्रचार तो ये ही करेंगे। इन्हीं के बल पर आप चुनाव लड़ेंगे। यह पीला वाला सियार बड़ा विद्धान है, विचारक है, कवि भी है, लेखक भी। यह नीला सियार नेता और पत्रकार है और यह हरा धर्मगुरु। बस, अब चलिए।''

''ज़रा ठहरो,'' भेड़िये ने बूढे सियार को रोका, ''कवि, लेखक, नेता, विचारक-ये तो सुना है बड़े अच्छे लोग होते हैं। और ये तीनों...''

बात काटकर सियार बोला, ''ये तीनों सच्चे नहीं हैं, रंगे हुए हैं महाराज! अब चलिए, देर मत करिए।''

और वे चल दिये। आगे बूढ़ा सियार था, उसके पीछे रँगे सियारों के बीच भेड़िया चल रहा था- मस्तक पर तिलक, गले मे कंठी, मुख में घास के तिनके। धीरे-धीरे चल रहा था, अत्यंत गंभीरतापूर्वक, सिर झुकाए विनय की मूर्ति!

उधर एक स्थान पर सहस्त्रों भेड़ें इकट्ठी हो गई थी, उस संत के दर्शन के लिए, जिसकी चर्चा बूढ़े सियार ने फैला रखी थी।

चारों सियार भेड़िये की जय बोलते हुए भेड़ों के झुंड के पास आए।

बूढ़े सियार ने एक बार जोर से संत भेड़िये की जय बोली! भेड़ों में पहले से ही यहाँ-वहाँ बैठे सियारों ने भी जयध्वनि की।

भेड़ों ने देखा तो वे बोलीं, ''अरे भागो, यह तो भेड़िया है।''

तुरंत बूढ़े सियार ने उन्हें रोककर कहा, ''भाइयों और बहनो! अब भय मत करो। भेड़िया राजा संत हो गए हैं। उन्होंने हिंसा बिलकुल छोड़ दी है।

उनका 'हृदय परिवर्तन' हो गया है। वे आज सात दिनों से घास खा रहे हैं। रात-दिन भगवान् के भजन और परोपकार में लगे रहते हैं। उन्होंने अपना जीवन जीव-मात्र की सेवा में अर्पित कर दिया है। अब वे किसी का दिल नहीं दुखाते, किसी का रोम तक नहीं छूते। भेड़ों से उन्हें विशेष प्रेम है। इस जाति ने जो कष्ट सहे है, उनकी याद करके कभी-कभी भेड़िया संत की आँखों में आँसू आ जाते है। उनकी अपनी भेड़िया जाति ने जो अत्याचार आप पर किए हैं उनके कारण भेड़िया संत का माथा लज्जा से जो झुका है, सो झुका ही हुआ है। परंतु अब वे शेष जीवन आपकी सेवा में लगाकर तमाम पापों का प्रायश्चित करेंगे। आज सवेरे की ही बात है कि एक मासूम भेड़ के बच्चे के पाँव में काँटा लग गया, तो भेड़िया संत ने उसे दाँतों से निकाला, दाँतों से! पर जब वह बेचारा कष्ट से चल बसा, तो भेड़िया संत ने सम्मानपूर्वक उसकी अंत्येष्टि-क्रिया की। उनके घर के पास जो हड्डियों का ढेर लगा है, उसके दान की घोषणा उन्होंने आज ही सवेरे की। अब तो वे सर्वस्व त्याग चुके हैं। अब आप उनसे भय मत करें। उन्हें अपना भाई समझें। बोलो सब मिलकर, संत भेड़िया जी की जय!''

भेड़िया जी अभी तक उसी तरह गरदन डाले विनय की मूर्ति बने बैठे थे। बीच में कभी-कभी सामने की ओर इकट्टी भेड़ों को देख लेते और टपकती हुई लार को गुटक जाते।

बूढ़ा सियार फिर बोला, ''भाइयों और बहनों, मैं भेड़िया संत से अपने मुखारविन्द से आपको प्रेम और दया का संदेश देने की प्रार्थना करता पर प्रेमवश उनका हृदय भर आया है, वे गद्‌गद् हो गए हैं और भावातिरेक से उनका कंठ अवरूद्ध हो गया है। वे बोल नहीं सकते। अब आप इन तीनों रंगीन प्राणियों को देखिए। आप इन्हें न पहचान पाए होंगे। पहचानें भी कैसे ? ये इस लोक के जीव तो हैं नहीं। ये तो स्वर्ग के देवता हैं जो हमें सदुपदेश देने के लिए पृथ्वी पर उतरे हैं। ये पीले विचारक हैं, कवि हैं, लेखक हैं। नीले नेता हैं और स्वर्ग के पत्रकार हैं और हरे वाले धर्मगुरू हैं। अब कविराज आप को स्वर्ग-संगीत सुनाएँगे। हाँ कवि जी...''

पीले सियार को 'हुआँ-हुआँ' के सिवा कुछ और तो आता ही नहीं था। 'हुआँ-हुआँ' चिल्ला दिया। शेष सियार भी 'हुआँ-हुआँ' बोल पड़े। बूढ़े सियार ने आँख के इशारे से शेष सियारों को मना किया और चतुराई से बात को यों कहकर संभाला, ''भई कवि जी तो कोरस में गीत गाते हैं। पर कुछ समझे आप लोग ? कैसे समझ सकते हैं ? अरे, कवि की बात सबकी समझ में आ जाए तो वह कवि काहे का ? उनकी कविता में से शाश्वत के स्वर फूट रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जैसे स्वर्ग में परमात्मा वैसे ही पृथ्वी पर भेड़िया। हे भेड़िया जी, महान्! आप सर्वत्र व्याप्त हैं, सर्वशक्तिमान हैं। प्रातः आपके मस्तक पर तिलक करती है, साँझ को उषा आपका मुख चूमती है, पवन आप पर पंखा करता है और रात्रि को आपकी ही ज्योति लक्ष-लक्ष खंड होकर आकाश में तारे बनकर चमकती है। हे विराट्! आपके चरणों में इस क्षुद्र का प्रणाम है।''

फिर नीले रंग के सियार ने कहा, ''निर्बलों को रक्षा बलवान् ही कर सकते हैं। भेड़ें कोमल हैं, निर्बल हैं, अपनी रक्षा नही कर सकतीं। भेड़िये बलवान् हैं, इसलिए उनके हाथ में अपने हितों को छोड़ निश्चिन्त हो जाओ, वे भी तुम्हारे भाई हैं। आप एक ही जाति के हो। तुम भेड़, वह भेड़िया। कितना कम अंतर है! और बेचारा भेड़िया व्यर्थ ही बदनाम कर दिया गया है कि वह भेड़ों को खाता है। अरे खाते और हैं, हड्डियाँ उनके द्वार पर फेंक जाते हैं। ये व्यर्थ बदनाम होते हैं। तुम लोग तो पंचायत में बोल भी नहीं पाओगे। भेड़िये बलवान् होते हैं। यदि तुम पर कोई अन्याय होगा, तो डटकर लड़ेंगे। इसलिए अपने हित की रक्षा के लिए भेड़ियों को चुनकर पंचायत में भेजो। बोलो संत भेड़िया की जय!''

फिर हरे रंग के धर्मगुरु ने उपदेश दिया, ''जो यहाँ त्याग करेगा, वह उस लोक में पाएगा। जो यहाँ दुःख भोगेगा, वह वहाँ सुख पाएगा। जो यहाँ राजा बनाएगा, वह वहाँ राजा बनेगा। जो यहाँ वोट देगा, वह वहाँ वोट पाएगा। इसलिए सब मिलकर भेड़िये को वोट दो। वे दानी हैं, परोपकारी हैं, संत है। मैं उनको प्रणाम करता हूँ।''

यह एक भेड़िये की कथा नहीं है, यह सब भेड़ियों की कथा है। सब जगह इस प्रकार प्रचार हो गया और भेड़ों को विश्वास हो गया कि भेड़िये से बड़ा उनका कोई हित-चिन्तक और हित-रक्षक नहीं है।

और, जब पंचायत का चुनाव हुआ तो भेड़ों ने अपनी हित-रक्षा के लिए भेड़ियों की चुना।

और, पंचायत में भेड़ों के हितों की रक्षा के लिए भेड़िये प्रतिनिधि बनकर गए।

और पंचायत में भेड़ियों ने भेड़ों की भलाई के लिए पहला कानून यह बनाया-

हर भेड़िये को सवेरे नाश्ते के लिए भेड़ का एक मुलायम बच्चा दिया जाए, दोपहर के भोजन में एक पूरी भेड़ तथा शाम के स्वास्थ्य के ख्याल से कम खाना चाहिए, इसलिए आधी भेड़ दी जाए।

हिन्दी साहित्य कला, संस्कृति और अभिव्यक्ति

कक्षा – एकादश

नवीन पाठ्य-क्रम

हिन्दी 'अ' (प्रथम भाषा)

With financial aid from the Government of West Bengal, this book is to be distributed to students of XI free of cost. This book is not for sale.

पश्चिमबंग उच्च माध्यमिक शिक्षा परिषद्